UNIVERSAL LIBRARY

OU_180420

UNIVERSAL LIBRARY

मीरा

: महाकाव्य :

परमेश्वर 'द्विरेफ'

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी-१

द्वितीय संस्करण
११००
अगस्त : १९६३

मूल्य : ३ रु. ५० न.।

प्रकाशक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो. बॉक्स नं. ७०, पिशाचमोचन
वाराणसी-१

मुद्रक
राष्ट्रीय प्रेस
बाग बरियार सिंह
वाराणसी-१

सादर समर्पित--

अपनी जननी को

जिसकी गोदी में

मीराँ के गीत सुने !

●

भूमिका

श्री द्विरेक द्वारा प्रणीत 'मीराँ' महाकाव्य मैंने पांडुलिपि में पढ़ा। प्रसिद्ध ऐतिहासिक रमणी मीराँ बाई का आख्यान लेकर यह काव्य-रचना की गयी है। कवि ने राजस्थान की तत्कालीन सामाजिक रीतियों, रूढ़ियों और प्रथाओं की पृष्ठ-भूमि पर मीराँ का पारिवारिक जीवन चित्रित किया है, और उसे उन समस्त अवरोधों के बीच एक मनस्विनी नारी का व्यक्तित्व प्रदान किया है।

कवि ने दिखलाया है कि मीराँ के हृदय में भक्ति का बीज बाल्यावस्था में ही बो दिया गया है। पड़ोस की एक लडकी के विवाह के अवसर पर मीराँ को बताया गया था कि उसका पति 'गिरधर नागर' है जो यमुना-कूल पर अनेक मनोरम लीलाएँ किया करता था, वही जीवनसंगी होगा। मीराँ ने अपनी माँ द्वारा कही गयी इस बात को सहज विश्वास से मान लिया और वह बचपन से ही इन्ही कल्पनाओं में पलने लगी।

उन दिनों राजस्थानी परिवार में कन्या का जन्म लेना एक अशुभ घटना समझी जाती थी। बहुत-सी तो जीवन भर उपेक्षा और विगर्हणा से घुट-घुट कर प्राण देती थीं। कन्या का विवाह एक दुर्घट घटना थी, जो सारे परिवार को जीवन भर चिन्तित रखा करती थी। विवाहों में पति देव का मनमाना सम्बन्ध रहा करता था। सारी व्यवस्था नारी के लिए त्रासकारिणी थी।

मीराँ के बचपन से ही भक्ति के संस्कार दृढ़ हो रहे थे, वह क्रमशः अंतर्मुख और आत्मनिष्ठ होती जा रही थी। उसे केवल अपने गिरिधर गोपाल की चिन्ता थी। उन्हीं के ध्यान में वह सब कुछ, सारी सामाजिक विडम्बनाएँ भूल गयी थी। समाज और उसकी समस्त भली-बुरी रीतियों से उसे कुछ भी लेना-देना न था। वह समाज की चारों ओर फैली हुई विभीषिका से ऊपर उठ चुकी थी। उसने अपने जीवन का नया लक्ष्य बना लिया था—नया ही लोक बसा लिया था।

इसी समय मीराँ के विवाह की चर्चा उठने लगी। पिता अतिशय चिन्तित और व्यग्र थे, किन्तु बड़े उत्साह से वर की खोज कर रहे थे। मीराँ की माँ अपने पति के इस असमंजस से दुःखी थी और समाज की उस प्रवृत्ति पर गंभीर विचार कर रही थी जो नर और नारी में इतना विषम विभेद करती है। इसी बीच मीराँ की माता का भी शरीर-पात हो गया और मीराँ जीवन के समस्त कष्टों को झेलने के लिये अकेली रह गयी।

भाई जयमल और बाबा राव दूदा जी के साहचर्य में बालिका मीराँ अब बड़ी होने लगी। मीराँ जयमल को अपने प्रभाव में ले आयी थी। उसकी कठोर वृत्तियों का बहुत कुछ शमन कर दिया था। राव दूदाजी अतिशय वृद्ध हो चुके थे। मीराँ उनके जीवन-अनुभवों से नई सीख ले रही थी। साथ ही वह अपनी नवीन जिज्ञासाएँ भी उनके समक्ष रखती थी, जो अतिशय असाधारण होती थीं और जिनसे दूदाजी चमत्कृत हो उठते थे।

चतुर्थ सर्ग में तरुणी मीराँ का सौन्दर्य-वर्णन और उसकी सगाई की चर्चा है। युवावस्था के आरंभ में वृत्तियाँ और मनोभावनाएँ जिस क्रम से परिवर्तित होती हैं, कवि ने उसका चित्रण किया है। सखियों का मीराँ के साथ व्यंग्य-विनोद करना और वय-सुलभ मनोरंजनों से उसका सत्कार करना दिखाया गया है। यद्यपि मीराँ पर नई उम्र का स्वाभाविक प्रभाव पड़ रहा था, पर वह अपने बद्धमूल गिरिधर-उपासना के आदर्श को भूल न पायी थी।

पाँचवें सर्ग में मीराँ की ससुराल-विदाई का वर्णन है। वहीं वर्षा-ऋतु में राजस्थान की अनोखी और अनुपम शोभा और उल्लास का चित्र भी अंकित किया गया है। इन दोनों प्रसंगों में कवि की भावना खूब रमी है और उसने इन्हें बड़ा रोचक बना दिया है। यहाँ फिर मीराँ का सौन्दर्य-वर्णन और उसके पति-मिलन का दृश्य दिखाया गया है।

शारीरिक आकर्षण और वासना के प्रवाह में जीवन के उदात्त लक्ष्य और संकल्प भूल न जाएँ, यह समस्या कवि ने छठे सर्ग में उठायी है। वर्षा के प्रथम प्लावन के पश्चात् शरद् की संयमित छटा आनी ही चाहिए, किन्तु मीराँ के पतिदेव इस अवसर पर संतुलन खो बैठते हैं और बहक जाते हैं। वे बहुत समय तक बहके रहते हैं। अतृप्ति, उन्माद, हिंसात्मक चेष्टाएँ उन पर अधिकार कर लेती हैं। कवि के शब्दों में वे भौतिकता के चक्कर में पड़ जाते हैं।

यहाँ से काव्य में नया खिंचाव प्रारंभ होता है। एक ओर मीराँ है, दूसरी ओर उसके असंयमी पति हैं। इस विरोध और तनाव में अंतिम विजय मीराँ की होती है, परन्तु इसके कुछ ही समय पश्चात् मीराँ के पतिदेव संसार से चल बसते हैं। रुग्ण पति की अविश्रान्त सेवा करते हुए मीराँ उनके प्रयाण से अतिशय विचलित हो जाती है। दसवें और ग्यारहवें सर्गों में उसके विलाप-गीत और उसकी वियोग-दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है। इन्हीं सर्गों में मीराँ की जीवन-निष्ठा और उसके आजन्म सेवा-व्रत ग्रहण करने का उल्लेख है। उसका सेवा-क्षेत्र चराचर तक प्रसार पा गया है। दास-दासियाँ, दीन-दुखी, किसान-मजदूर सभी उसके सेवा-कार्य से उपकृत होते हैं।

बारहवें सर्ग में राजस्थान की मरुभूमि में सेवाऽमृत का सिंचन करती मीराँ की जीवन-चर्या दिखायी गयी है। एक मार्मिक घटना का संयोग पाकर यह सर्ग चमक उठा है। उस समय राजपूताने की प्रथा थी कि कुएँ पर जाकर कोई अन्त्यज पानी नहीं खींच सकता था। पानी खींचना तो दूर, उसे किसी कुलीन नर-नारी से कुएँ पर पानी माँगना भी निषिद्ध था।

एक अन्त्यज मरुभूमि में चलता-चलता थक गया था। दोपहर हो चुकी थी। उसे प्यास लग रही थी। पानी की खोज में दूर-दूर भटकता हुआ वह एक कुएँ के समीप पहुँचा जहाँ एक युवती पानी भर रही थी, किन्तु उस कृष्णकाय अन्त्यज को कुएँ पर पहुँच कर भी प्यासा ही रहना पड़ा। युवती ने उसे प्रथानुसार पानी देना स्वीकार न किया। वह पानी के लिये तड़पता-तड़पता मृत्यु के मुख में जाने लगा।

इसी समय भक्ति-प्रेरित जन-सेवा के मार्ग पर चलती-चलती मीराँ भी उसी स्थान पर जा पहुँची और उस तड़पते हुए मानव-शरीर की सुश्रूषा करने लगी। कुछ ही देर में वह प्राणी स्वस्थ हुआ। चेतना आते ही वह मीराँ के चरणों पर गिर पड़ा।

इस अवसर पर कवि ने मीराँ के मुख से समयोचित शिक्षावाक्य कहलाए हैं।

त्रयोदश सर्ग में मीराँ का विष-पान करना और उससे निरापद बच रहना दिखाकर काव्य की समाप्ति की गयी है।

ऊपर की वस्तु-योजना से यह स्पष्ट भासित होता है कि 'द्विरेफ' जी ने मीराँ महाकाव्य में जीवन की विस्तृत भूमियों को स्पर्श करने की चेष्टा की है। राज-स्थान की तत्कालीन समाज-व्यवस्था की अच्छी झलक पुस्तक पढ़ कर मिल जाती है। मीराँ के शैशव के संस्कारों का क्रम-विकास मनोवैज्ञानिक भूमिका पर प्रदर्शित किया गया है, जिससे उसकी चरित्र-सृष्टि में बहुत कुछ मार्मिकता आ गयी है।

शैशवकालीन क्रीड़ा-कौतुक, भाई-बहन का सौहार्द, माता-पिता की अभिलाषा और चिन्ता, वृद्ध दूदाजी का वात्सल्य, सहेलियों का मनोविनोद, तारुण्य की मनोदशा, विदाई का अवसाद, मिलन का औत्सुक्य, रागरंग, नखशिख, आदि के वर्णनों के साथ उद्दाम लालसा और प्रशान्त नियंत्रण, समाज की दारुण निष्क्रि-यता और व्यक्ति की अदम्य कर्मण्यता आदि के द्वन्द्व भी बड़े सुन्दर ढंग से दिखाये गये हैं।

काव्य में आये हुए गीतों का सौन्दर्य उल्लेखनीय है, किन्तु गीतों के सौन्दर्य से भी अधिक कवि का सुन्दरतर प्रकृति-वर्णन है। विशेषकर राजस्थान की वर्षा का वर्णन आन्तरिक आह्लाद से किया है। यहाँ इन दोनों का एक-एक उदाहरण दे रहा हूँ :—

एक गीत-लड़ी :—

छाया में अंकित मुस्कानें
खग-विहगी के वे मधु गाने

आज हृदय से दूर निराशा
जीवन की यह स्वर्णिम जय है।
आज विटप में शिव किसलय है।

एक प्राकृतिक चित्र :—

हँस रहा था शस्य अंतर में लिये अनुराग
अन्न का सुकुमार यौवन खेलता था फाग,
मुक्त पर्णो पर तुहिन के कण रहे थे खेल
बाल रवि की अंशुओं का था अलौकिक मेल।

:o: :o: :o.

पक्षियों के रव अमरपुर की सुखद झंकार
क्षुब्ध पावस सरित की-सी कलित गुंजित धार,
गूँजता था किसी विरही के हृदय का प्रान्त
शान्त जिसकी रागिनी पर झूम जाता स्वान्त।

रूप-वर्णन के स्थल भी अच्छे हैं, यद्यपि वे आवश्यकता से अधिक उत्तेजक हो गये हैं। उनसे अधिक प्रभावशाली वे चित्र हैं, जिनमें देश-काल की स्थिति का यथार्थवादी उल्लेख है, किन्तु उनसे भी अधिक मार्मिक वे उत्साह-पूर्ण वाक्य हैं, जो किसी की ओर से या मीराँ के मुख से कहे जाकर काव्यगत जीवन-दर्शन का निर्देश करते हैं :—

उड़ उड़ कर नभ को छू डालूँ, चाह रहा नर,
एक पक्ष, सन्तुलन-हीन गिरता जाता पर।
फिर भी नर की भग्न भावना नहीं हारती,
कोटर मे निरुपाय, बद्ध नारी पुकारती।
मूल्य नहीं रह गया आज नारी के स्वर का,
ज्ञान छिन्न हो गया उसे निज शक्ति प्रखर का!
भग्न हुई उर-वीणा के तारों में क्रन्दन,
विषधर की कुडलियों के पाशों में चन्दन।

ऐसी ही भावोत्तेजक पंक्तियों मे 'मीराँ : महाकाव्य' की आत्मा बोल उठी है। मुझे इस काव्य में नई सूझ और प्रतिभा के दर्शन हुए। रचना निश्चय ही प्रथम श्रेणी की है।

अध्यक्ष : हिन्दी-विभाग }
सागर विश्वविद्यालय }

नन्ददुलारे वाजपेयी

●

प्रणेता का पृष्ठ

'मीराँ' महाकाव्य में मैंने मीराँ के जीवन को ही निकट से देखा है। यह सच है कि लोगों के सामने मीराँ का भक्ति-स्वरूप ही है, पर कवि के समक्ष मीराँ बालिका, किशोरी और तरुणी भी है। प्रथम सर्ग मे साधारण बालिका मीराँ को उसकी माँ ने जिस गिरिधर नागर की ओर इंगित किया, उसी को अन्य सर्गों में उसने स्वप्न में, माँ के मरण पर वत्सल के रूप मे, दादाजी के पास जिज्ञासा के रूप में, प्रणय पर पति के रूप में और वैधव्य पर आश्रय के रूप मे तथा जन-साधारण की आत्मा के स्वरूप मे ग्रहण किया है---यही क्रम-विकास प्रस्तुत काव्य का प्रयास रहा है। जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्ति, हास-उपहास, व्यंग्य-विनोद को भी विस्मृत नही किया गया है। गायन, वादन, नर्तन और काव्य-प्रणयन आदि मे प्रवीण होने के कारण मीराँ मेरी मान्यता मे चित्रकर्त्री भी है। वह भाव-मुग्ध, कल्पनाशील, रस-सिद्ध, कोमल कला-निर्मात्री ही नही, अपितु जन-जन जीवन-दात्री, अनुभूति-प्रवणा मानवी भी है। वह काव्य और कला के कानन को रस-सिञ्चित करने वाली पुण्यतोया मरु-मन्दाकिनी तो है ही, साथ ही अपने उद्दाम वेग से कगारों, हिंस्र-जीवो और पाषाणो को अपने जीवन-रस मे सान कर बहा ले जाने वाली गुरु-गभीरा भी है। काव्यमय स्वरूप से भी अधिक आज वह साध्वी अगणित अनाथिनियों, विधवाओं की जीवन-आलबन-धन बनी हुई है। इसीलिए मैंने तिथि, संवतो आदि के चक्र मे न पड़कर मीराँ के जीवन को ही निकट से देखने का प्रयत्न किया है। उस महारूढ़ि-काल मे उसका अकल्पनीय सीमा-त्याग लोक मे कही सुलभ नही। जनश्रुति में रविदास का मीराँ का गुरु होना प्रसिद्ध है, इसलिए काव्य में मीराँ के द्वारा तृषित अछूत की सेवा स्वाभाविक है। मीराँ साधारण नारी भी है, इसलिए दुख-सुख, जन्म-मरण, जगज्जाल के विषय में भी उसकी अरुचि नही है। कवि और मीराँ में एकरसता होने के कारण अनेक उद्गार कवि के मुख से भी कहे जा सकते हैं, यह जान लेना आवश्यक है। अपने सुलभ उपकरणो से मैंने मीराँ को एक सुन्दरतर प्रतिमा मे ढालने की चेष्टा की है। काव्य मे आयी हुई निम्न-लिखित पंक्तियाँ मीराँ के प्रति मेरे मनोभावों को अभिव्यक्त कर सकेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है---

नाम मीराँ, नीरजा की मुकुल-सा अभिराम,
बाल-रवि के अंशुओं के जाल-सा छविधाम;
फेन सा उज्ज्वल, मराल-कुमार-चञ्चु-समान,
मुग्ध-पावस-जलधरों का सप्त-रंगा गान।

काव्य-रचना की कालावधि में सर्वश्री परशुराम चतुर्वेदी, सुधांशु, राहुल, विनोदशंकर व्यास आदि अनेक ज्ञात और अज्ञात लेखकों की कृतियों से लाभ उठाया गया है, अतः उनके प्रति आभार-प्रदर्शन मेरा कर्त्तव्य है। काव्य-प्रकाशन के सुअवसर पर सर्वश्री नन्ददुलारे वाजपेयी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, सुधाकर पाडेय, नरोत्तम लाल जोशी, भवानीशकर शर्मा, शंकर लाल फतेहपुरिया, रत्नाकर पांडेय, डा० शिवगोपाल मिश्र की सहानुभूति भी विस्मृत नहीं कर सकूँगा।

स्नेहशील श्री कृष्णचन्द्र बेरी की तत्परता के कारण ही इसका प्रकाशन अविलम्ब किया जा सका।

पिलानी (राजस्थान)
दीपमालिका, सं० २०१३

परमेश्वर 'द्विरेफ'

अनुक्रम

	पृ. सं.
प्रथम सर्ग	१
द्वितीय सर्ग	१७
तृतीय सर्ग	३३
चतुर्थ सर्ग	५०
पंचम सर्ग	६७
षष्ठ सर्ग	८२
सप्तम सर्ग	६७
अष्टम सर्ग	११२
नवम सर्ग	१२८
दशम सर्ग	१४३
एकादश सर्ग	१७३
द्वादश सर्ग	१८८
त्रयोदश सर्ग	२१०

—:०:—

मीराँ : महाकाव्य :

•

प्रथम सर्ग

★

आँगन में रज-संकुल भू पर
बालिका एक लघु-लघु सुन्दर
चुपचाप, मौन, निस्पन्दित स्वर
ज्यों वीणा

साधक का ज्यों आराधित मन
ज्यों कवि का लोकोत्तर चिन्तन
त्यों दीप-शिखा सी .नत, क्रीड़न-
तल्लीना

नन्हें कर, नन्हा मुखमंडल
लघु चरणों में नूपुर चंचल
इकहरे, स्निग्ध तन पर अंचल
था झीना

कंकण-कूजित प्रतिपल चल कर
थे रहे बना मिट्टी का घर
प्रिय भाव लिये विहगी कोटर
ज्यों हीना

मीराँ

साकार हुआ सुन्दर चिन्तन
वर्तुलाकार बन गया सदन
जिसमें केन्द्रित था उसका मन
आल्हादित

कितना सुन्दर था वह लघु घर
यह नहीं कहा जा सकता, पर
सब कुछ भूली उसको पाकर
वह बाला

वह भाव भरा ले अंतराल
करती थी प्रतिपल देख-भाल
ऊपर रवि, भीतर तिमिर-जाल
संगुंफित

जाने क्यों फिर उसने पग धर
कर दिया खंडशः अपना घर ?
खोगई नींद में फिर पीकर
ज्यों हाला

लेटी थी भू के अंचल में
ज्यों मीन शान्त नीरव जल में
कुछ भाव न थे अंतस्तल में
निर्लिप्ता

मीराँ ! मीराँ ! के मृदु मृदु स्वर
से सहसा गूँज पड़ा वह घर
पर मिला नहीं कोई उत्तर
चिर परिचित

स्वर से होता था यही भान
है मातृ-हृदय का सजल गान
जिसमें मनमाना सुता-ध्यान
प्रतिबिंबित

प्रथम सर्ग

कर इतस्ततः मा अन्वेषण
आई आँगन में ज्यों तत्क्षण
देखा तो था तन पर रज-कण
का ताना

बाजे की गूँजी स्वर-लहरी
इतने में निकट निकट गहरी
पर वह सोई थी ज्यों बहरी
मद-घूर्णित

देखने लगी मा जी भर कर
नन्हीं कलिका सी वह सुन्दर
लघु लघु साँसों का लघु लघु स्वर
चल, झंकृत

झकझोरा ज्यों ही छुड़ा शयन
संस्मृति का करते हुए चयन
संभ्रम निहारते रहे नयन
अरुणोत्पल

कर फैलाये आतुर मा ने
लेने गोदी में अनजाने
ललचाई मातृ - अंक पाने
नैसर्गिक

बोली मा उसका कर चुम्बन
तू आज बता क्यों यों उन्मन ?
भर लिया सभी मिट्टी से तन
क्यों बेटी ?

निद्रा का था यदि चढ़ा रंग
तो सुन्दर गद्दे थे, पलंग
धरती पर ऐसी क्या उमंग
जो लेटी ?

अविरल बाजा बज रहा, निकट
आई बरात, तुम चलो झपट
बालों की बिखर रही ये लट
परिवर्तित

सब पहुँच गये मंडप नीचे
तू सोती रही नयन मीचे
भर लिए अलक सौरभ सींचे
श्री–भासित

क्रीड़ा-कंदुक, कर-पुत्तलियाँ
दासी, धायें, हँसमुख अलियाँ
पर तुमको प्रिय रज की गलियाँ
मल-पंकिल

अभिनव सुन्दर मंडप दीपित
बक के नव पंखों सा विस्तृत
था घर अभिनय-गृह सा सज्जित
प्रिय, सुखकर

था जन-संकुल बाहर—भीतर
निज कर्मों में रत नारी नर
थे लगे हुए प्रतिपल पथ पर
दृग नीरव

बाजे का गूँज रहा था स्वर
चलते आते थे सज सज कर
घर के ही निकट बराती, वर
स्मित-आनन

गाती थीं गायन किन्नरियाँ
सुन्दर सुरेन्द्र की सी परियाँ
गुंजित गहरी अंतःपुरियाँ
दीपोज्ज्वल

प्रथम सर्ग

स्वागत-गायन गातीं सखियाँ
पथ पर थीं बिछा रही अँखियाँ
रस में डूबी मन की पँखियाँ
मधु-सिंचित

थे भूल रहे चिन्तक चिन्तन
गायन-स्वर में डूबे वर जन
कामिनियों का तकते यौवन
लोकोत्तर

मीराँ के घर के बहुत पास
ही वह विवाह - उल्लास - हास
था कलिका का मधुमय विकास
अनुरंजन

उसकी सौरभ की दिव्य लहर
से खिंचा आगया था वह वर
बन्धन में बँधकर भी मधुकर
आनंदित

मीराँ को लेकर वह जिस क्षण
पहुँची घर में अविलंब चरण
वर पूज रहा था घर-तोरण
वैधानिक

यह देर हुई क्यों कहो बात ?
तुम तो सबको दे गई मात
हम डाल डाल, तुम पात पात
मायाविनि !

यों वार्तालाप हुआ क्षण भर
मीराँ की माँ ने सब सह कर
मंजुल स्वर गुंजित किया प्रखर
प्रिय पंचम

अवलोकन में भूली बाला
घर भरा हुआ मंडपवाला
गीतों की झड़ती थी माला
करुणामय

सूना घर आज हुआ अपना
मस्तक पीड़ित, उर भी भारी
यह पुत्री प्राणों से प्यारी
तिल तिल क्षण क्षण कर बड़ी हुई
जब बड़ी हुई तो बेचारी
अनजाने गाँव चली, जिसका
कोई न वहाँ परिचित अपना
सूना घर आज हुआ अपना

वह दृश्य देखती थी अपलक
मीराँ सुधबुध-विस्मृता अथक
नव वधू मौन, थी नतमस्तक
लज्जित वर

सहसा फिर बाल-सुलभ-स्वभाव
से विस्मित उर में लिये चाव
बोली मा से, थे भरे भाव
आनंदित

है कौन, कहाँ, मा ! मेरा वर ?
मैं किसकी दुलहिन बनी अमर ?
यों सुन आया मा का जी भर
रोमाञ्चित

जिस गायन को गाते-गाते
मीराँ पुत्री थी इस नाते
सोची थीं जाने की बातें
उर-द्रावक

प्रतिध्वनित हुआ वह ही चिंतन
जननी का मन बन कर उन्मन
विस्फारित करने लगा नयन
सूनापन

महिलाओं ने उपहास-हास
था किया, किन्तु मा छोड़ श्वास
गंभीर हुई बन कर उदास
अतिरंजित

जिस नारी के हो एक सुता
केवल, वह क्या रे! सके बता
वर कहाँ चिरंतन, कौन पता?
भावुकता

फिर सहसा हँसते हुए, मधुर
दे दिया स्वरों में यह उत्तर
तेरा पति तो नटवर नागर
गौ-पालक

माँ ने सोचा था क्षण प्रतिक्षण
टूटे न कहीं दुहिता का मन
इसलिये बताया वर गौधन
सर्वेश्वर

पर वह बाला तल्लीन हुई
मिल गई उसे अनुभूति नई
वह नटनागर गौपाल-मयी
चिर चिंतित

दिन गया, निशा भी गई बीत
खोये नभ में भी प्रणय-गीत
पर उसकी निश्छल प्रणय-प्रीत
परिवर्द्धित

मीराँ

सोते चिन्तन, जगते चिन्तन
नटनागर में उलझा था मन
जग से उदास, घर से उन्मन
अन्तर्तम

अस्पष्ट रूप-रेखा सुन्दर
नयनों के आगे रह रह कर
देती थी भावों से भर भर
अंतस्तल

यह एक दिवस की रही बात
लेटी थी मा के साथ साथ
चन्द्रिकामयी थी शरद् - रात
सुन्दरतम

मा गोपालक, नटवर, नागर
ये कौन, कहाँ है इनका घर ?
तू कहती रही न मेरे वर
शिव शाश्वत !

मा के विस्मय का था न पार
अंतर्मन में गहरा दुलार
उसके भावुक मन को विचार
बालोचित

वह बोली यह जो शुक्ल रात
है दीख रही ज्यों नव प्रभात
जब बहती रहती मलय-वात
सुखदायक

कालिन्दी के अभिराम कूल
सुध-बुध जातीं गोपियाँ भूल
तब शनैः शनैः छिप कर दुकूल
एकत्रित

वे चुनते रास-विलास-लीन
कोई नारी जब वस्त्र-हीन
लज्जित पुकारती उन्हें दीन
दयनीया

तो देते उसका बढ़ा चीर
दुर्योधन की तज मधुर खीर
कर लिया विदुर का पान नीर
प्रेमांकित

रहते नागर बैकुंठ - धाम
राधा के साथ सदा ललाम
साधते भक्त के सभी काम
पल प्रतिपल

कह कर यों ले श्रद्धा अपार
मन ही मन में वह बार-बार
मानसिक विमल पूजोपचार
थी करती

तीनों लोकों के सदय नाथ !
पुत्री पर रखना अभय हाथ
यह कोमल कलि, नत-नयन-माथ
कर-बद्धा

करती जाती थी अवलोकन
मीरां विस्मित वह कथा-श्रवण
तल्लीन हुआ जाता था मन
चिन्तनमय

कितने महान्, कितने सुन्दर
सर्वेश्वर, गोधन, नट नागर ?
उसकी दुलहिन, वे मेरे वर
समदर्शी

यों सोच रही थी वह बाला
जिसका न जगत् देखा भाला
भावों का विस्तृत था जाला
सतरंगा

सो गई यही करते चिन्तन
बच्ची थी, था ऐसा ही मन
सपनों की क्रीड़ा ही बचपन
उच्छृंखल

उसकी निःसृत-आयात साँस
में था गहरा विश्वास-हास
पर जाने क्यों, मा थी उदास
संक्षुब्धा

उसके श्रवणों में एक बात
मा ! तुम क्या गाती हो प्रभात ?
किसका करते संधान तात
मुद्रित दृग

मैं उनको कैसे करूँ प्राप्त ?
तुम कहती वे सर्वत्र व्याप्त
धरती का छोर कहाँ समाप्त ?
उद्गमस्थल ?

क्षण क्षण कर पूरी हुई निशा
हँस पड़ी पूर्व में अरुण उषा
तम हुआ लीन, थी स्वच्छ दिशा
ज्योतिर्मय

थी जाग पड़ी मीराँ चंचल
अत्यन्त निकट उसके जयमल
दोनों क्रीड़ा-तन्मय निश्छल
निज दैनिक

बोली मीराँ भैया जयमल
मेरी गुड़ियों का विवाह कल
देखो, यह पहनेगी मखमल
रक्तांकित

आओ, हम तुम चुन-चुन लायें
पीपल के पत्ते जो पायें
झट चलो न कोई ले जाये
संचय कर

वे पर्ण-चयन को चले युगल
मानो गतिमय विश्वास सरल
कूए के निकट रहा चलदल
अति विस्तृत

उसकी शीतल गहरी छाया
से सुखमय कूए की काया
शाखा पर पर्णों की माया
मनमोहक

पीपल की छाया में दो खग
कूए के बहुत निकट लगभग
लड़ते थे इतस्ततः भग–भग
फड़ फड़-फड़

देखने लगे, वे गये भूल
आये ले क्या उद्देश्य मूल ?
झट बैठ गये फिर झाड़ धूल
पनघट पर

पनघट का था जलपूर्ण गर्त
कंकड़ फेंके तो उठे वर्त
आपस में दोनों किये शर्त
स्वाभाविक

छोड़ने लगे नावें जल में
घूमने लगीं तिर तिर पल में
हर्षातिरेक अंतस्तल में
संप्लावित

कागज की दोनों स्वच्छ नाव
प्रिय थे उनको वे हाव-भाव
दोनों को ही अत्यन्त चाव
जिज्ञासा

क्षण-क्षण प्रतिक्षण पल प्रतिपल कर
जब एक नाव डूबी गल कर
मीराँ पछताई कर मल कर
व्यामूढ़ा

कागज का ही वह रहा खेल
पर वह न व्यथा कुछ सकी झेल
सच लिया मान थी शुष्क बेल
संचिंतन

स्मृतियों की दीप्त हुई सरणी
वह कितनी -सुन्दर थी तरणी ?
मानस की काँप गई धरणी
आलोड़न

पर भूली क्योंकि अभी बाला
सुख—दुख से पड़ा न था पाला
देखा न अभी तक था काला
तम भीषण

फिर बोला यों प्रसन्न जयमल
तू कहती रही न मुझसे कल
'चन्दा मामा' मेरे अविरल
अनुगामी

प्रथम सर्ग

मा कहती थी यों नहीं बात
वे चलते मेरे साथ–साथ
कहते थे यह ही बात तात
सत्यांकित

फिर बोल पड़ी वह नहीं, नहीं
वे साथ तुम्हारे चले कहीं ?
मेरे अनुगामी सही यही
विधु मामा

माँ ने यह कथा बताई है
काला, वह बुढ़िया माई है
करती नित वहाँ कताई है
छाया में

यह भी माँ ने कल दिया ज्ञान
नीचे धरती के अनड्वान्
है एक सींग वाला महान्
धरणी-धर

जब-जब भी होता पाप हरा
लेता है वह अवकाश जरा
थक कर, तब जाती काँप धरा
दिग्मंडल

तारों का जो गुच्छा प्यारा
वह नभ की गंगा की धारा
रेखा, वह सुर-पुर पथ न्यारा
दूरान्तिक

दोनों फिर कूए में झुक कर
बोलने लगे कुछ रुक-रुक कर
झट ध्यान गया फिर कंदुक पर
अस्थायी

दोनों करते - करते क्रीड़न
लड़ने लग गये, हुई अनबन
वे भूल गये सब अपनापन
थे क्रोधित

मीराँ का भर मिट्टी से तन
जयमल करने लग गया रुदन
उसने भी उसका किया वदन
रुदनोत्सुक

फिर रोते-रोते चले गेह
वे धूलिकणों से भरे देह
अंचल में मा ने किया स्नेह
मधुभाषण

कितने ही यों निशिदिन बीते
योंही रहते हारे-जीते
थे साथ-साथ खाते-पीते
वे निश्छल

सोते जगते मा के चिन्तन
से वह भी विभु में मन ही मन
तल्लीन हुआ करती प्रतिदिन
अज्ञाता

मा स्वयं शील-विश्वास-युता
तो क्यों न विमल निष्काम सुता ?
फूली कलिका की हरी लता
रस-प्लावित

कोई दिन इनके एक बार
घूमता साधु घर-द्वार-द्वार
आया पाकर सत्कार, प्यार
श्रद्धामय

थो वंशीधर की मूर्ति पास
उसके, अभिनव सुन्दर सुहास
पाने उसको मीराँ उदास
थी व्याकुल

छोड़ा उसने सब खान पान
प्रतिमा में ही बस गये प्राण
दो दिन बीते पर वही ध्यान
वह ही धुन

मा ने समझाया बार-बार
ऐसी चीजों का क्या विचार ?
मैं और मँगा दूँगी अपार
मनवांछित

पर उसके अन्तर की पुकार
गहरी थी, था गहरा विचार
तन हुआ म्लान, पर कहाँ हार ?
ध्रुव चिन्तन

बालिका जान उसने अजान
थे किये मूर्ति के गुण-बखान
शिशुओं में जिज्ञासा प्रधान
अपना हठ

था उसे सर्वथा नहीं ज्ञात
इतनी फैलेगी यहाँ बात
उसके मन में आघात-घात
पछतावा

उसको प्रिय थी वह मूर्ति महा
पर भावुकता का स्रोत बहा
तो सहसा निकला 'धन्य' अहा !
यह बाला

वह करने लगा यही चिन्तन
इस बाला का कैसा दृढ़ मन?
लघु-लघु तन मन, दो दिन अनशन
सत् ध्यायन

क्या मैंने इतना किया ध्यान?
रे ! उदर-हेतु मानापमान
यह ही अधिपा सच्ची महान्
मैं सीमित

उसने आत्मा का सुना गीत
मीराँ की सुन्दर हुई जीत
पीड़ा झेली तब मिला मीत
संकल्पित

हर्षातिरेक से अंतराल
संहर्षित था गहरा, विशाल
होवे ज्यों धन पाकर निहाल
निर्धन जन

★

द्वितीय सर्ग

★

और सर्वथा निवृत्त होकर
कार्य-कलापों से वह घर के
अपन शयन-कक्ष में पहुँची
सोपानों पर चढ़, चल कर के

देखा तो नन्ही सी मीराँ
सपने में सब भूल रही थी
साँसों के चंचल तारों पर
तन्मय होकर झूल रही थी

निकट पास की ही शय्या पर
उसके बापू भी सोये थे
जग था नीरव, नभ के तारे
अंधकार में ही खोये थे

उस प्रकोष्ठ के वातायन में
दीपक एकाकी जलता था
विरही साथी के अन्तर सा
अपने में घुल-घुल गलता था

अन्धकार के महा विवर से
साँस-साँय की ध्वनि आती थी
मानो जग की गहन कालिमा
सिर धुन-धुन कर पछताती थी

थकी हुई थी, कान्त-पार्श्व में
वह शय्य पर पग पसार कर
लेट गई, अभिराम कुञ्ज में
ज्यों हरिणी सुध बुध विसार कर

शयन और हिलने डुलने से
निद्रा टूट गई प्रियतम की
खुले नयन, जंभाई आई
ज्योति हाथ पैरों में चमकी

स्वान्त-मधुर-विस्मृत वाणी में
स्वर अनुराग भरे वे बोले
पड़े न पायल स्वन् श्रवणों में
कब आई तुम हौले-हौले ?

तीव्र व्यंग्य में यों वह बोली
कैसे पता चले आने का ?
पास नहीं जब रहा आज कुछ
प्रथम मिलन में जो पाने का ?

याद आज भी होगी बातें
जिस दिन एकाकी कोने में
जाग रहे थे रात-रात भर
जीवन के मधुमय गौने में

जरा प्रतीक्षा के वे पल ही
प्रहर बन गये थे बन्धन के
थी न दृगों में नींद, सुनहले
सपने भी विस्तृत थे मन के

किन्तु प्रतीक्षा नहीं रही वह
आज आप के दिन हैं प्रियतम !
नयन नींद में खो जाते यों
क्योंकि आज मैं रही न उत्तम

दिन मेरे हैं आज प्रियतमे !
तो क्या नहीं तुम्हारी रातें ?
सभी व्यर्थ के झगड़े छोड़ो
करो काम की सुन्दर बातें

भुज-पाशों में बद्ध कर लिया
कह कर यों प्रियतमा-वक्ष को
बोली, मीरां जग जावेगी
करो न गुंजित शयन-कक्ष को

पहले ही सो गई आज यह
बिना दूध के हो बेचारी
और चढ़ रहा था परसों ज्वर
पीड़ित थी जिससे सुकुमारी

इन दिवसों में इसके सिटपिट
रही, हो गई कितनी दुबली ?
खाने-पीने की चिन्ता को
छोड़ खेल में रहती पगली

मंदिर के बूढ़े बाबा से
कहा आपको, लाला जंतर
बिटिया के हो गई नजर है
पंडित से पढ़वाओ मंतर

किन्तु आपने किया न कुछ भी
जाने क्या करते हो दिन भर ?
चौपड़-पाशे में रहते हो
मिलता क्या अवकाश न क्षणभर ?

केवल एक अंक में कन्या
ध्यान नहीं देते उस पर भी
बाहर ही बाहर की चिन्ता
आखिर है तो अपना घर भी ?
नहीं करे भगवान, किन्तु फिर
भी यदि कुछ भी इसे हो गया
जीवन का आधार हमारा
चिर-निद्रा में कहीं सो गया

तो मैं कहाँ छिपाऊँगी मुख
किसको देख-देख जीऊँगी ?
किसके साथ-साथ हँस मिलकर
कथा कहूँ, खाऊँ-पीऊँगी ?
कह कर यों गंभीर हो गई
घूम रही थीं स्मृतियाँ सारी
वे दिन, जिनमें संतति—कारण
फिरती रहती मारी - मारी

जरा-जरा से भी जन-जन की
करनी पड़ती थी उपासना
रखना पड़ता था सब का मन
रही अमिट मातृत्व—वासना
स्नान, ध्यान, तरु-सिंचन, पूजा,
निराहार निर्जल व्रत, चिन्तन
में झङ्कार गूँजती, आयें
पुष्पवती होने के मधु क्षण

मूर्तिमान प्रत्यक्ष हो गये
कठिन साधना, जप-तप अविरल
सोच-सोच यों थी वह चिंतित
कहीं छूट जाये यह संबल ?

बार-बार वह सोच-सोच कर
भी न जरा कुछ जान सकी थी
घूम रही थी इधर उधर हो
निश्चित पथ कुछ पा न सकी थी

राजपुत्र - कुल की माताओं
को भी पुत्री क्यों न सुहाती ?
पाटल—कलिका—मालाओं से
क्यों असहाय उदासी छाती ?

किया प्रश्न ज्यों हो यह उसने
उसके पति गंभीर हो गये
उत्तर की हो गई समस्या
चिन्ता में मझधार खो गये

पर, उपहास लिये फिर बोले
क्या लड़की भी अरे ! काम की ?
चीज पराये घर की आखिर
केवल चिंता सुबह शाम की

और न संतति, हमें इसलिये
प्राणों से प्यारी लगती है
किन्तु जन्म पर कन्याओं के
झुँझलाती सारी जगती है

इसका मुख्य हेतु है यह ही
है समाज की विषम व्यवस्था
जिसके घर में कन्या उसकी
नहीं सुधरती कभी अवस्था

कपड़े आभूषण दहेज में
जीवन व्यर्थ चला जाता है
कन्यावाले को पग-पग पर
बारंबार छला जाता है

एकमात्र कन्या-विवाह में
बिक जाता है हरा भरा घर
सब स्वाहा कर देने पर भी
वर वालों को स्वाद नहीं पर

इसीलिये बचते पीड़ा से
मोल कहाँ झगड़ा लेते हैं ?
कन्या जन्मी यह सुनते ही
नीचे आँख गड़ा देते हैं

न्याय न यह, अपराध भयंकर
किन्तु करें क्या, सभी विवश हैं
नैतिकता गिर गई सभी की
एक व्यक्ति का क्या कुछ वश है ?

मानव के पावन अंतर् का
स्पंदन ही विवाह है मंजुल
किन्तु आज कितनी कृत्रिमता ?
पावनता में गया स्वार्थ घुल

ठेस लगी, मानस दुख पाया
याद गई बातें आती थीं
तिरस्कार होता था प्रतिदिन
वह भी कन्या कहलाती थी

और सगाई के अवसर पर
पिता बहुत ही दुख पाया था
जो कह देता वहीं-वहीं जा
बार-बार ही भरमाया था

मा कहती थी, तू जन्मी है
उस दिन से हम पाते हैं दुख
इधर उधर भटके फिरते हैं
जिस दिन से देखा तेरा मुख

द्वितीय सर्ग

बिदा किया घर से जब उसने
तो जी भर कर पीया पानी
और यहाँ श्वसुरालय की तो
अतिशय दारुण कष्ट-कहानी

ननदों के उपहास विष-भरे
घनी सास की वे फटकारें
सुन-सुन कर उर रो पड़ता है
अश्रु छलकते न्यारे-न्यारे

निरुद्देश्य ही, बिना काम ही
पति द्वारा मारी जाती हैं
जिनको सुनकर पत्थर की भी
आत्मायें थर्रा जाती हैं

इसी चिन्तना में ही उसकी
मौन दृष्टि जा पड़ी सुता पर
पानी फेर दिया जावेगा
यों ही इसकी भी इच्छा पर

क्या प्राणों से भी प्यारी यह
योंही सदा छली जायेगी ?
दमन-चक्र में महाशिला पर
योंही सदा मली जायेगी ?

इसकी भी अरुणोदय लाली
क्या क्षण भर में म्लान बनेगी ?
जीवन के पथ पर चल-चल कर
थक-थक कर निष्प्राण बनेगी ?

सोच-सोच नीरस, उदास थी
उसे देख चिन्तित वे बोले
अरे, कौन चिन्ता, जो खोई ?
क्या उर में हो गये फफोले ?

मीरां

जरा जरा सी ही बातों पर
तुम चिन्ता में खो जाती हो
अनजाने अंतर-प्रदेश को
अश्रु-कणों से धो जाती हो

तुम नारी हो, हृदय तुम्हारा
तुहिन-कणों से बना हुआ है
मानस के निर्मल अंबर में
इन्द्र-धनुष सा तना हुआ है

किन्तु पुरुष का अंतर भी तो
घोर घटाच्छादित अंबर है
उसकी उमड़ घुमड़ का गर्जन
महा भयंकर, अजर, अमर है

मैं डंठल हूँ, मेरी कलियाँ
पीड़ातप में सूख गई हैं
पर प्रसन्न मैं, कब निराश हूँ
क्या मानव की भूख गई है ?

यह मीराँ कितनी भाती है
मैं तो कुछ भी कह न सकूँगा ?
आँखों से ओझल होने पर
मैं इस जग में रह न सकूँगा

किन्तु सदा रोते रहना ही
मुझे न किंचित् भी भाता है
क्या मानव सुन्दर धरती पर
केवल रोने को आता है ?

तुम इसकी चिन्ता-चिन्ता में
सब उल्लास गँवा बैठी हो
नीरसता के तमस्-लोक में
धीरे - धीरे जा बैठी हो

मीरां की माँ लगी सोचने
अनुनय-विनय भरी ये बातें
इनकी वैसी की वैसी हैं
यद्यपि बीत गये दिन, रातें

मेरे चारों ओर निरंतर
इनकी अभिनव अभिलाषायें
मँडराती रहती हैं, केवल
मुझे छोड़ इनको क्या भाये?
बोली—फिर उपहास व्यंग्य, मैं
क्यों आकर्षण चला गया क्या?
क्षण प्रतिक्षण अब तन परिवर्तित
शेष रह गया और नया क्या?

मेरे पीहर में जाकर जब
सखियों पर तल्लीन हुए तुम;
तभी अरे, मैं जान गई थी
विचलित, पथ से हीन हुए तुम?

मंडप-नीचे भी बोले, यदि
मिलें दासियां मुझको अगणित
तो मैं शकुन मांगलिक देऊँ
नवल वधू को सुख देऊँ नित

तुम मेरे पीहर-घर भर को
सभी तरह से चाट गये हो?
वर तो कितने ही देखे, पर
तुम ऊपर के पाट हुए हो?

तेरी वे अलबेली सखियां
ज्ञात तुम्हें क्या, कहां आजकल?
उनके बिना तुम्हें क्षण भर भी
पड़ती थी कुछ नहीं कहीं कल

बोली वह, क्या करें विवश हम
तुम ठग ठहरे, मित्र निराले
दूर देश ठग कर ले आये
चारों ओर लगाये ताले

सोने के पिंजड़े में सीमित
हुई सुखद झङ्कार हमारी
नभ के विस्तृत कृष्णांचल में
साथिन खोईं न्यारी-न्यारी

चुपके से पिंजड़े में घुसकर
मीठे बोल सुना जाते हो
अपनी कुत्सित घृणित वासना
तृप्त बनाने ही आते हो ?

दुनियाँ क्यों जाने, हम भी कुछ
अपनी अभिलाषा रखती हैं ?
और उसी के लिये रात-दिन
रात-रात भर भी जगती हैं

पर, पुरुषों को मधु की चिन्ता
उनको तो मकरंद चाहिये
सौरभ-ओतप्रोत कलियों की
मृदु पंखुड़ियाँ बंद चाहिये

लगी सोचने, मीराँ मेरी
अनजाने घर में जायेगी
और न जाने कितने दिन—
पश्चात् लौट पीहर आयेगी

संगिनियों को छोड़ अपरिचित
जन को परवश प्यार करेगी
उसके जीवन की नीरसता
पीड़ायें, दुख-भार हरेगी

मा को भी विस्मृत कर देगी
और नया संसार बसेगा
नई चेतना, नई भावना
क्षण प्रतिक्षण प्रतिपल विहँसेगा

और कहूँगी जब मैं बेटी !
यहाँ और रुक जाओ कुछ दिन
होली के पीछे भेजूँगी
तब वह नीरस सी दिन गिन-गिन

दूर देश से किसी व्यक्ति के
आने की प्रतिदिन सोचेगी
किसी काक की काँव-काँव पर
मन में बहुत बलैयाँ लेगी

लेने को आये देवर को
जब कितनी ही बात सहेगें
'ना' करने पर तभी कहेगी
मा ! मुझको वे बहुत कहेंगे

और हमारा पक्ष छोड़ कर
तब देवर से मिल जायेगी
सास, ननद दुख पाती होंगी
कह-कह कर यों बहकायेगी

पीहर को तजते, नयनों में
विरह-व्यथा की धार बहेगी
पर प्रियतम के लिये सभी कुछ
नारी बारंबार सहेगी

मा का विरह सतायेगा, पर
उस पर झट मुस्कान खिलेगी
एक बार की बिछुड़ी दुहिता
कौन कहे कब पुनः मिलेगी ?

तब मा भी अपनी पुत्री के
सुख में अपना सुख मानेगी
पुत्री भूलो, पर पुत्री को
तो मा पुत्री ही जानेगी

पीड़ा, अत्याचार सहन कर
वह अपने को सुखी कहेगी
मारो, पीटो, पर वह प्रिय की
चिन्ता में ही लीन रहेगी

यह नैसर्गिक नियम जगत् का
नारी आत्म-समर्पण कर दे
पुरुष संयमी निज पौरुष से
भरी भुजाओं में तन धर दे

पर, मीराँ चरणों की जूती
निज जीवन में नहीं बनेगी
वह न संकुचित हो रोयेगी
आत्मा का संगीत सुनेगी

इसके लिये अभी से मुझको
इसको ज्ञान कराना होगा
इसकी नैसर्गिक स्वतंत्रता
पर भी ध्यान धराना होगा

एक प्रज्ज्वलित दीप सहस्रों
दीपों को आलोकित करता
स्त्री-जीवन का आत्म-हनन यह
मुझको बारंबार अखरता

इतने में उसके प्रियतम ने
ऐसी कोई बात सुनाई
जिसके कारण हँसते-हँसते
हर्ष-मग्न आँखें भर आईं

उसको संबोधित से करते
फिर मीराँ के बापू बोले
देखो, तुम जो नित्य रात-दिन
सोचा करती हौले-हौले

ऐसा करना ठीक नहीं है
इससे तन कृश हो जाता है
सभी जानते यों चिन्तन में
कभी न कुछ आता जाता है

इस चिन्तन का दुष्प्रभाव फिर
मीरां पर भी बहुत पड़ेगा
जैसी मा वैसी ही पुत्री
हो जायेगी, मन उजड़ेगा

इस नन्हे-नन्हे पल्लव को
सदा खेलने दो, खाने दो !
फूल-फूल कर बढ़ खिल-खिल कर
वृन्तों पर जी भर छाने दो !

प्रिय गिरधर गोपाल बता कर
यह क्या ऐसी आदत डाली ?
सोते जगते, उठते चलते
रखती प्रतिमा काली-काली

अरे, आप भी कैसे भोले ?
भ्रम में ही भूले पड़ते हो
साधारण सी बात रही, पर
जाने क्यों इतना लड़ते हो ?

मुझ को अपनी नन्ही बिटिया
बहुत-बहुत प्यारी लगती है
साथ-साथ मेरे प्रातः ही
ध्यान, चिन्तना को जगती है

लघु-लघु स्वर का मृदु-मृदु कंपन
आत्मा को पावन कर देता
क्षमा, धैर्य, संतोष, सत्यता
अंतराल में शिव भर देता

हरी भरी दूर्वा दोने में
फूलों का संचय कर लाती
मधुमय फल, पक्वान्न आदि से
फिर गिरधर के भोग लगाती

इस छोटी सी ही दुलहिन ने
अपना प्रिय पहचान लिया है
जग-जीवन क्या है, इसने तो
इसी आयु में जान लिया है

इसका जो संसार पृथक् है
उसकी रचना ही न्यारी है
इसे ज्ञात है, जिस अमृत को
जगती खोज-खोज हारी है

इसकी साथिन गुड़ियों के ही
खेलों में खोई रहती हैं
जग के सुख-दुख, हर्ष-कष्ट में
डूब-डूब बहती, दहती हैं

पर इसकी एकान्त-साधना
इसके पूर्व-जन्म का फल है
क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह में
इसका कभी न मन चंचल है

यों ही कह देने पर इसने
उसको प्रिय, आराध्य बनाया
ऋषि मुनि, जीवन में भी जिसकी
नहीं जान पाये कुछ माया

समझाऊँ भी तो कह देती
मा ! तुमने ही तो बतलाया
इसमें दोष नहीं, यह तो सब
है उस ही ईश्वर की माया

मस्तक पर टिकिया चन्दन की
लगा, हाथ में ले कर माला
यों लगती मानों जगती में
ढूँढ़ रही शाश्वत उजियाला

चरणामृत में तुलसी लेना
तो यह कभी नहीं बिसराती
प्रतिमा का परिक्रमण प्रात में
सायं, यों दो बार लगाती

आश्चर्यान्वित वे फिर बोले
मैं अब जो देता हूँ पैसे
वे सबके सब ही प्रतिमा पर
रख देती वैसे के वैसे

उनकी कुछ भी चीज न खाती
कभी न रखती है वे गिन-गिन
यह गिरधर की भक्त निराली
यह तो पक्की बनी पुजारिन

इसी बीच में सहसा मीराँ
सोते-सोते बोली, बहकी
मानो अर्धरात्रि में कोई
चिड़िया चोंच खोल कर चहकी

बार-बार ही हँसी खिलखिला
फिर गंभीर बनी चिन्तामय
उन दोनों ने देखा, इसको
बुरे स्वप्न से हुआ कहीं भय

आशंका थी, चेत करा कर
लगे पूछने भय की बातें
वह बोली निर्लिप्त भाव से
मा ! मुझको श्रीकृष्ण बुलाते

कालिन्दी के रम्य पुलिन पर
तरु-छाया में वेणु बजाते
हरी भरी, कोमल दूर्वा पर
बैठे-बैठे धेनु चराते

उनकी ओर अग्रसर होते
ही पवमान भयंकर आया
धूमिल अंधड़-लीन दिशाएँ
अस्त-व्यस्त पथ पर तम छाया

भूल गई, पथ मिला न कोई
डाँवाडोल हुई, मन हारा
रोई, पल प्रतिपल रोई तब
गिरधर ने दे दिया सहारा

तिमिर तिरोहित, ज्योतिर्मय जग
ज्यों के त्यों वे थे मुस्काते
गायन-स्वर-लहरी में भूले
प्रतिपल अपने पास बुलाते

मात-पिता निश्चल, अवाक् थे
दोनों देख रहे, न अघाते
उनके उर में यही रागिनी
मा ! मुझको श्री कृष्ण बुलाते

*

तृतीय सर्ग

★

बीज के मानस में अम्लान
नवल अंकुर का अरुणिम प्रात
पुनः क्षण प्रतिक्षण क्रमिक विकास
स्निग्ध वे बनते अंकुर पात

और उन पर्णों का उल्लास
विवर्द्धित होकर बनता फूल
फूल में गंध, रूप, रस, स्पर्श
समय पाकर होते फिर धूल

धूल का फूल, फूल की धूल
यही जग का अंतर्हित मूल
फूल है सूक्ष्म, धूल है स्थूल
नाम दो, किन्तु एक ही कूल

न जाने कब से यों अविराम
चले आते हैं छाया-धूप ?
सृष्टि से नित नवीन विस्तीर्ण
चित्रपट पर अंकित दो रूप

मीरां

प्रात की अंतिम रेखा रात
रात की इति-श्री पूर्ण प्रभात
एक ही वस्तु उदय ये अस्त
एक ही चक्र-भ्रमित दिन रात

जगत् की किन्तु अनोखी रीत
विभाजित किये पतन-उत्थान
गया बन प्रातः स्वर्ण-विहान
अस्त को मान लिया अवसान

सृष्टि का आदि न, और न अंत
जगत् निस्सीम, न इसका पार
किया सुविधानुसार ही स्वयं
मनुज ने यह सीमा-विस्तार

अरे, मानव ही स्वयं अपूर्ण
निम्न हैं उसके ज्ञान, विचार
तरी कागज की क्षुद्र, सस्सीम
अब्धि को क्या कर सकती पार ?

संकुचित सीमाओं में नित्य
घूमता मानव बारंबार
और उन सीमाओं का द्वार
बन रहा है संसृति का पार

जहाँ से चलने का आरंभ
वहीं पर आ जाते सब घूम
सभी की अपनी-अपनी चाल
सभी की आशाओं में धूम

मनुज का यह विनाश, निर्माण
सुनिश्चित जिसकी अपनी माप
माप से पहले या मँझधार
स्खलन है जीवन का अभिशाप

कुसुम की गति का हो आरंभ
उधर झड़ने को होवें पात
सुमन की अभिलाषाएँ शेष
वर्ण-उर में करतीं आघात

झुलस कर पत्ते जाते सूख
मुकुल रहती एकाकी मौन
निरन्तर, हिम-कण, आतप, शीत
कष्ट देते पर ढकता कौन ?

बालिका की जननी अवदात
हुई ज्यों ही झड़ने को पात
मुकुल मीराँ उसकी असहाय
सहेगी कैसे हिमकण, वात ?

दृगों के आगे तम का नृत्य
हृदय में गहरा पश्चात्ताप
सिकुड़ कर बना गात्र ज्यों शूल
व्याप्त अभिलाषाओं में ताप

किये कितने ही सतत उपाय
मुकुल आई पर्णों के बीच
अविकसित मुकुल, पर्ण भी म्लान
न पाई पर्णों से रस खींच

एक कोने में निश्चल, भग्न
हृदय के भाँति-भाँति के भाव
बुदबुदे उठते, होते लीन
घना मानस में करते घाव

रात को जो आया था स्वप्न
उसी की ही चिन्ता, दुख व्याप्त
विजन में मीराँ थी चुपचाप
हुआ हो जैसे अश्रुत प्राप्त

मीराँ

यामिनी स्तब्ध, चन्द्रिकालीन
रजत सा फैला विस्तृत जाल
बढ़ रही थी समगति से नाव
पवन अनुकूल दे रहा ताल

लहरियों पर तिरती थी शुभ्र
मंद तरणी ज्यों राज-मराल
कुमुद-कुल का कमनीय सुहास
तरी की चंचु विशुद्ध प्रवाल

निरख कर मीराँ थी तल्लीन
गूँजते थे वीणा के तार
पास में बैठे थे प्रिय मौन
नयन थे चार, दृगों में प्यार

किन्तु परिवर्तन हुआ अकाल
आशु सहसा ही डोली नाव
तरंगें हुईं चपल उत्ताल
पवन का भी प्रतिकूल प्रभाव

कुमुद-कुल की कलिकायें फुल्ल
टूट कर हुईं शून्य में लीन
भीम झंझा का यातायात
व्योम हो गया सुधांशु विहीन

अभ्र, जल, ककुभों में सर्वत्र
छा गया महातिमिर घनघोर
तरी उद्वेलित हुई, अशान्त
रह गया था मझधार, न छोर

उलट कर नाव हुई जलमग्न
हुए प्रिय भी सहसा अज्ञात
रह गई एकाकी जल-बीच
अकेली मीराँ परवश-गात

अब्धि का भीम उतार-चढ़ाव
वीचियाँ नागिन की ज्यों लोल
स्वप्न हो गया अचानक भंग
नयन ज्यों दिये किसी ने खोल

कई दिन पीछे का यह स्वप्न
आज भी छेड़ रहा था तान
चित्र की भाँति एक पर एक
संस्मरण आते जाते म्लान

करवटें लेती बारंबार
स्मरण का नहीं टूटता तार
श्रवण-पुट में वह ही ध्वनि एक
दृगों में वही स्मरण-संचार

पिता मीराँ के कहते बात
रचेगा धूम-धाम से ब्याह
अश्व, गज, दास, दासियाँ, भृत्य
सुता को देंगे जितनी चाह

एक ही पुत्री का सम्बन्ध
करेगें व्यय अनुपम धन, धान
देख कर सभी करें आश्चर्य
सुने जो, खुल जायेगें कान

सोचती यों, हो जाती खिन्न
सुता को बुलवाती फिर पास
शीश पर हाथ फिरा, मुख चूम
मनोरम करती हास-विलास

खिलाती और पिलाती नित्य
करों से ही नित भोजन-पान
दृगों में देती अंजन मंजु
कराती हाथों से ही स्नान

मीराँ

कभी करती मीराँ अनुरोध
सुनाओ मा ! गिरधर की बात
वही जिसमें जन्मे थे कृष्ण
अँधेरी थी भादों की रात

सुता का भोला भाला चाव
बहा ले जाता मा को दूर
सुता सुनती, मा कहती बात
कृष्ण-लीला में दोनों चूर

कथा में भूला स्वच्छ स्वभाव
निरखती मा, जाता अवसाद
बालकों में कितना विश्वास ?
गये बचपन की आती याद

नित्यप्रति का यों निरख दुलार
सुता की चाची, ताई, और
पास की महिलाएँ अविराम
बात करतीं ध्वंसात्मक घोर

अरे, यह तो है पुत्री मात्र
कहीं हो यदि सुत ही संतान
चरण रखती न धरा पर, कौन
कहे कितना होता अभिमान ?

जनों की आलोचना, कुरीति
श्रवण कर होता उसको खेद
सोचती रखते क्यों हैं लोग
पुत्र-पुत्री में इतना भेद ?

पुत्र के ही क्यों लाड़ दुलार ?
सुता हो क्या कर आई पाप ?
वही क्यों तिरस्कृता, हतभाग्य
लिये रे, जीवन में अभिशाप ?

तृतीय सर्ग

एक पुत्रों का ही परिवार
चला सकता है क्या संसार ?
कहाँ है पुत्री जैसा प्यार ?
सृष्टि की दुहिता ही पतवार

दिवस, फिर रात, दिवस, फिर रात
बंद होता खिलता जलजात
डूबते तिरते थे जन, जीव
जगत का बहता सतत प्रपात

हुई वह सहसा ही निर्जीव
एक दिन लिये ललाम विचार
हृदय में अभिलाषाएँ दिव्य
स्वजन के प्रति संचित सब प्यार

अकेले पति बैठे थे मूक
स्नेह जीवन का हुआ समाप्त
पूर्व-जन्मों के कोई पाप
खो गई सौरभ होकर प्राप्त

कर्ण-कुहरों में गुंजित एक
नष्ट होते जीवन का गान
दृगों के आगे स्वर्ण-विहान
दृगों के आगे ही अवसान

मृत्यु का भीषण प्रलय-प्रवाह
बहा ले गया मंजु वह मूर्ति
वही हो गई स्वयं जड़ मात्र
सदा भरती रहती जो स्फूर्ति

शून्य के अंचल में विश्राम
सभी लेते यह नियम अटूट
सुविकसित, सुरभित कुसुम-पराग
कहीं ले जाता कोई लूट

मीराँ

नित्य मानव द्वारा यह खोज
कौन है वह ऐसा अज्ञात
अचानक हर लेता जो प्राण
छोड़ देता है नीरस गात ?

अभी यों का यों रहा रहस्य
गये युग पर युग युग ही बीत
सका कोई भी इसे न जान
अभी भी उत्कंठा के गीत

किसी ने वन में किये उपाय
किसी ने जग में किया निवास
रहे असफल ही, मिला न ठौर
हुए वे सभी मृत्यु के ग्रास

इसी असफलता के ही नित्य
गीत गाये जाते अभिराम
अमरता - सुन्दर - स्वप्न - विभोर
जगत् को मिला नहीं आराम

देह, मन, प्राणों के उद्गार
सभी इच्छाएँ उसकी शेष
हुआ कब उसका पूर्ण विकास ?
श्वेत हो पाये नहीं सुकेश

उसी की तन विभूति के साथ
विजन में खोये मेरे प्राण
चिता की उल्काओं पर व्यर्थ
करूँगा मैं न नीड़-निर्माण

दिवंगत आत्मा का रमणीक
नहीं तो लुट जायेगा न्यास
अंक में पड़ी रहा चुपचाप
सुप्त मीराँ ज्यों स्तब्धाकाश

उसे आई थी मीठी नींद
हो रही अन्यमनस्क अजान
न जाने क्यों अत्यन्त उदास ?
साँस थी उष्ण अमित सा ध्यान

रुदन, क्रन्दन, हा हा, चीत्कार
सुने थे उसने चारों ओर
न खाया, पीया, शिथिल शरीर
न डाला मुख में कोई कोर

एक 'मा' 'मा' का करुणा-गीत
यही गा प्रतिपल बारंबार
श्रान्त, निद्रा में नीरव, मग्न
हो गई थी वह, क्या उपचार ?

उठी तो भी वह ही अनुरोध
यहाँ मा कब आयेगी लौट ?
सुता के व्यथा-प्रपूरित शब्द
पिता का गला रहे थे घोंट

यही कर लिया गया था व्याज
तुम्हारी मा नाना के गाँव
रुदन के आगे उसके किन्तु
न चल पाते थे कुछ भी दाँव

सभी को जाना है जिस गाँव
न बतलाया उसका कुछ नाम
चराचर क्षण-भंगुर, म्रियमाण
किन्तु उस पर भी जीवन-धाम

अरे, यह जीवन का प्रासाद
दूर जाना पड़ता है छोड़
चिरंतन नाता पीछे, पूर्व
नहीं रख पाया कोई जोड़

खेलता स्वप्नों से अविराम
मनुज में कितनी ममता, मोह ?
विपथ करते, लेते मन जीत
विपंची के अवरोहारोह

निकट के करते स्वजन दुलार
किन्तु उसका जीवन सुनसान
बालिका लघु-लघु वह सुकुमार
गई जाने कैसे पहिचान ?

निभृत कोने में बैठी शान्त
ताकती सदा क्षितिज का छोर
पिघल कर बह-बह जाता स्वान्त
एकटक मौन दृगों की कोर

गगन में उड़ते मत्त विहंग
वाटिका में सुमनों का सार
दिव्य तारे करते संकेत
किन्तु उनसे कुछ रहा न प्यार

उसे लगता जैसे निर्जीव
जा रही है वह बहती दूर
एक गिरधर-प्रतिमा से नित्य
रहा करता जीवन भरपूर

सलौनी कलिका सा मृदु गात
जोड़ कर-युगल और नतभाल
मूर्ति के आगे गाती गीत
करो चाकर गिरधारी लाल !

सहेली, साथी जयमल साथ
खेलती आँख-मिचौनी खेल
कृष्ण तो होते अंतर्धान
ढूँढती गोपी सुख-दुख झेल

तृतीय सर्ग

एक दिन बैठे दोनों साथ
बहन भाई करते थे बात
कहानी का चल रहा प्रसंग
सुनी थी दोनों ने जो रात

इसी अंतर में एक बिलाव
लिये पंजे में एक कपोत
भागता दिया दिखाई दूर
कबूतर की आई थी मौत

उठे, दौड़े दोनों जी तोड़
मृत्यु के मुख से किसी प्रकार
छुड़ाया उसको, वह था खिन्न
पड़ा कोने में, ले आभार

बहन भाई की हुई सलाह
पिलावें आओ, इसको नीर
अन्न के दाने दिये बिखेर
चुगाने को कपोत के तीर

कर रही मीराँ उसको प्यार
हुआ फिर भी वह तो भय-भीत
काश, सकता वह कुछ भी जान
बहन भाई की निश्छल प्रीत

बहुत ही था जयमल उद्दंड
किन्तु मीराँ के आगे शान्त
समाता अंबर में चुपचाप
भीम अंधड़ गतिमय, दुर्दान्त

सुता दी दादाजी को सौंप
पिता थे व्यस्त, राज्य का काम
राव दूदाजी थे अति वृद्ध
एक ही काम, राम का नाम

वृद्ध बालक में थोड़ा भेद
बाल में आशा, वृद्ध निराश
निराशामय डंठल पर कान्त
अरुण कोंपल का हुआ निवास

वृद्ध के जीवन की अनुभूति
लिये थी अति ही प्रचुर अभाव
छलकती थी होने अभिव्यक्त
इधर थे जिज्ञासा के भाव

वृद्ध नित करते थे जप, ध्यान
रहा जीवन का अन्तिम भाग
चयन कर लाती दूर्वा, फूल
भक्त दोनों, दोनों में राग

ताप-दग्धा कलिका को पूर्ण
गई मिल तरु की शीतल छाँह
किये जाता था पथ–निर्माण
पंथ-बाधा का पूर्ण प्रवाह

साथ उठ जाते, सोते साथ
साथ ही जप तप पूजा ध्यान
साथ ही काम, साथ आराम
भक्त दो थे, दो ही भगवान्

एक थी दुनियाँ से अनभिज्ञ
दूसरा सांसारिक विद्वान्
हो गये मानो तिनके जीर्ण
इसलिये नया नीड-निर्माण

हृदय बच्चों का अति निर्दोष
पत्र जैसे कोरा हो, श्वेत
भूमि पर बोओ जैसा बीज
विवर्द्धित होता वैसे खेत

जगत् विनिमय का क्रीड़ा-केन्द्र
सभी के ही गुण, दोष, स्वभाव
परस्पर खिंचते, लाते खींच
पड़ा करता अन्योन्य प्रभाव

उमड़ता निर्मल पारावार
बालिका उसमें जाती डूब
आ गया था उसको आनंद
वृद्ध भी नहीं रहे थे ऊब

कथा में पूछ लिया यह प्रश्न
कृष्ण क्यों लेते हैं अवतार ?
मनुज हो जाते हैं पथ-भ्रष्ट
धरा भी सह न सके जब भार

तभी वे लेते जग में जन्म
चक्र को कर में लेते धार
भक्त को लेते शीघ्र उबार
राक्षसों को देते हैं मार

आप तो कहते सदा समान
कृष्ण सब से करते हैं प्यार ?
करें क्यों कभी किसी का त्राण ?
किसी को क्यों देते वे मार ?

कौन राक्षस, कैसे हैं भक्त ?
भक्त वे जो करते सत्कार
और राक्षस होते दुर्दान्त
कृष्ण को भी देते दुत्कार

भयंकर होते बड़े पिशाच
मार कर खा जाते सब जीव
जनों का गला घोटते व्यर्थ
रक्त पी, करते नाच अतीव

दमन, शोषण से हाहाकार
गूँजता यहाँ, वहाँ, उस पार
सज्जनों का करने परित्राण
कृष्ण तब लेते हैं अवतार

हृदय में उठते रहे विचार
बालिका पर न पा सकी पार
राक्षसो के नख, शृङ्ग अपार
भयाकुल करते बारंबार

प्राकृतिक उत्कंठा-वश मौन
न रह पाई, बोली यों बात
रात को जलता जब तक दीप
छिपकली भी तो करती घात

जन्तुओं के हरते हैं प्राण
नित्य प्रति कुत्ते और बिलाव
रात भर छिप-छिप कर चुपचाप
वनों में जन्तु खेलते दाँव

भीम ने दुःशासन का रक्त
लिया था पी अंजलि भर तीन
आप ही तो कहते थे बात
मीन की बैरिन होती मीन

सिंह, चीतों को दिये न दंड
मृगों का कब करते प्रभु त्राण ?
सरलता-वश बोली वह सुता
सदा हरते रहते ये प्राण

अत्यधिक हुआ उन्हें आश्चर्य
साफ नास्तिकता की-सी बात
लगे उनको ये तर्क अकाट्य
इसे कैसे इतना यह ज्ञात ?

कहा पगली ! पशु हैं ये मूर्ख
नहीं इनमें मति, ये अनजान
रहा करता पशु का पशु भक्ष्य
नित्य की घटना पर क्या ध्यान ?

कृष्ण का ही यह माया - जाल
सभी करने वाले भगवान्
करे जो इन बातों पर ध्यान
नष्ट होता उतना ही ज्ञान

कृष्ण का बाल-विनोदी खेल
किया जो कालिन्दी के कूल
सुनाते थे तन्मय वे वृद्ध
किन्तु वह उसमें सकी न भूल

समझ में आया कुछ न विवाद
सभी करते वाले भगवान्
वही मकड़ी का तनते जाल
वही मक्खी के हरते प्राण

पान करते हैं राक्षस रक्त
नित्यप्रति, देते जब तब मार
रक्त पीने वाले भगवान्
कृष्ण ही खाते रहते हार

कहें दादाजी, शाश्वत ब्रह्म
ब्रह्म से जग का प्रादुर्भाव
ब्रह्म में ही होता जग लीन
जगत् के नश्वर हैं सब भाव

ब्रह्म है क्या, कैसा आवास ?
ब्रह्म का क्या आकार प्रकार ?
ब्रह्म में ही होना जब लीन
व्यर्थ हैं तब आचार-विचार

पुनः बोली मीराँ गंभीर
ब्रह्म का कैसा पूर्ण स्वरूप ?
ब्रह्म अनुभव की वस्तु, न वर्ण्य
महा संसार पतन का कूप

सृष्टि का हो जाता जब ध्वंस
प्रलय में सो जाता संसार
लोक में जल ही जल भर पूर
नहीं स्थल का रहता आधार

चिरंतन ब्रह्म लिए अस्तित्व
उसी क्षण भी रहता अविराम
और एकाकीपन से क्षुब्ध
रच दिया करता सृष्टि सकाम

सुन रही थी मीराँ चुपचाप
समझ से बाहर था जंजाल
कहाँ रहते हैं ये नक्षत्र ?
शून्य में कैसे इनकी चाल ?

कहा फिर दादाजी ! ये लोग
कहाँ जाते हैं मर कर आप ?
कह रही थी मा, जाते साथ
मनुज के धर्म, कर्म, सब पाप

व्योम की ओर किया संकेत
वहाँ हैं नरक स्वर्ग के धाम
मिले अत्याचारी को कष्ट
धर्मचारी पाते आराम

पाप करने वाले जो लोग
उन्हें ले जाते यम के दूत
और जो कृष्ण-भक्त निष्पाप
उन्हें नभ-यान विष्णु के पूत

किन्तु दादाजी ! क्या है पाप ?
धर्म भी क्या, व्याख्या क्या पूर्ण ?
दूसरों को सुख देना धर्म
पाप अभिलाषा करना चूर्ण

युद्ध में किया मनुज - संहार
कह रहे थे पहले यह आप
बहा होगा कितना ही रक्त
बताओ, क्या न हुआ यह पाप ?

अरी, तू पगली, सके न जान
धर्म, यह क्षात्र - युद्ध की घात
तीक्ष्ण तलवारों के मझधार
मृत्यु हो तो जीवन अवदात

बालिका समझ न पाई धर्म
ज्ञात हो सका न क्या है पाप ?
कभी कुछ कह देते हैं बात
काट देते फिर उसको आप

घूमता रहा अहर्निश चक्र
संस्मरण मा के आते याद
किसी कोने में बैठी स्वयं
मौन रोती, होता अवसाद

सोचती क्यों होता है जन्म ?
मृत्यु क्यों ? कहाँ पूर्ण अवसान ?
सृष्टि क्या है ? क्या हैं जन, जीव ?
नहीं ? या हैं ? क्या हैं भगवान ?

★

चतुर्थ सर्ग

★

आज प्रफुल्लित कलि उपवन की
आओ मधुलिट् , तान सुनाओ !
ऋतु आई मधुमय गुंजन की

चू-चू पड़ती लघु-पंखुड़ियाँ
कण-कण में सौरभ की लड़ियाँ
सह सकती न प्रतीक्षा-घड़ियाँ
पूर्ण करो अभिलाषा मन की !
आज प्रफुल्लित कलि उपवन की

आज माँगती यह आलिंगन
कर-युगलों में बन्द करो तन !
प्राण हुए व्याकुल जीवन-धन !
इच्छाएँ सौ-सौ चुम्बन की
आज प्रफुल्लित कलि उपवन की

पल्लव-शय्या , सरित्-किनारा
सुन्दर वेला, छाया घन की
आज प्रफुल्लित कलि उपवन की
ऋतु आई मधुमय गुंजन की

कृश कटि का शत-शत परिवर्तन
मन को आकर्षित करता था
नयनों की पीड़ा हरता था
मारुत्प्रेरित नव पल्लव की
अभिराम लहरियों सा नर्तन

कटि की किन्-किन्, पायल के स्वर
पग-पग पर मधु बरसाते थे
कामिनियों को तरसाते थे
हर्षाते थे, सरसाते थे
था बरस रहा अमृत झर-झर

मधु बालाओं का सम्मेलन
जिसमें गुंजित कल तंत्री पर
प्रत्येक किशोरी का अवसर
उल्लास, हास, हावों, भावों
से पूर्ण परस्पर कल केलन

गायन-स्वर-लहरी रुकते ही
व्यंग्यों में संगिनियाँ बोलीं
लगती तो हो भोली-भोली
प्रिय का आवाहन कर डाला
उर में मंजरियाँ उगते ही

अपरा ने ली वीणा कर में
संगायन का ताना बाना
जो टूट गया था मनमाना
सम्मिलित हुआ, फिर बिखर गया
देखते - देखते क्षण भर में

विद्युत् ने अवगुंठन खोले
सतरंग का सुन्दर अंचल
दूर - दूर उड़ता चिर - चंचल
विजन - पवन की भाँति भ्रान्त
मन भी डोले तन भी डोले

कुंचित मुख पर अंकित व्रीड़ा
अंतर् में सुन्दरतम क्रीड़ा
नयन अयन, नासिका - श्वास में
कुच - कुल में मादकता घोले
विद्युत् ने अवगुंठन खोले

प्रिय ने तापित कर फैलाये
मंजु घोष प्रिय-स्वर मँडराये
बोली बलखाती, हँसती सी
बोलो प्रियतम, हौले - हौले ?
विद्युत् ने अवगुंठन खोले

सब संगिनियाँ मुस्काती थीं
तुम भी कलिका चटकीली हो
सुरभीली और रँगीली हो
यों व्यंग्यों की बौछारों में
वह भी हँस-हँस कर गाती थी

अन्या कलिका की बारी थी
पति-गृह में वह आई ही थी
मधु-संचय कर लाई ही थी
ननदें करतीं उपहास किन्तु
वह भाभी सबसे न्यारी थी

उसने बाँधे बिछुवे पग मे
अँगड़ाई के मोहक दर्शन
जा रहे जीतते अन्तर्मन
संगीत-पूर में डूब गई
स्वर, ताल भरे थे डग डग में

प्रियतम मेरे जब आयेंगे
नीरव, अँधियारी रातों में
मधुमय, उन्मत्त प्रभातों में
मन्मथ-जननी बरसातों में
वे प्रेम-वृष्टि बरसायेंगे

मद-भरी, रसीली चितवन से
अलकों से, प्रिय अवगुंठन से
हृदयस्पर्शी मुख-चुंबन से
कर्तव्य-मूढ़ हो जायेंगे
प्रियतम मेरे जब आयेंगे

जितनी छोटी, उतनी खोटी
लज्जा को बिल्कुल लाँघ गई
सीमा से आगे टाँग गई
जितनी बाहर, उतनी भीतर
कुछ कुछ पतली, कुछ कुछ मोटी

तुम जान न पाई हो बातें
उनमें से दो सखियाँ बोली
दोनों की कसमस थी चोली
तीखे कटाक्ष की धारों से
मृदु मृदु करती करती घातें

मीराँ

मीराँ पर सब यह ताना है
लड्डू कब दिये सगाई के?
भूखे ही रहे मिठाई के
मुख मीठा किये बिना सोचो,
कोई गा सकता गाना है?

यह बात पते की कह डाली
बन्धन में बँध कर भूल गई
आगमन—याद में भूल गई
कैसे किसको लड्डू दे दे
जब प्रिय के पास रही ताली?

ज्यों ही ऐसा ताना मारा
सब लगीं ठहाके से हँसने
संकेतों में कटाक्ष कसने
सब एक ओर, पर मीराँ का
भर गया लाज से तन सारा

अब नहीं रही मीराँ बच्ची
विधु का प्रतिबिंब हुआ नव मुख
नासिका, दृगों के बदले रुख
वह भी सर्वज्ञा संगिनियों
को कह सकती सच्ची सच्ची

ऐसी बातों में चाव हुआ
वर्तुल कंदुक से स्तन कर्कश
उभरे वक्ष—स्थल पर समरस
पलकें नीची, मंथर मंथर
चलने का मनहर भाव हुआ

वह अब चुपचाप लजाती है
उसकी मुस्कानें मधु भीनी
अधरों में ही सीमित झीनी
प्रिय के अनुराग-सनी चंचल
बाहर कम आती जाती है

स्वर्णिम दीपित वस्त्राभूषण
आवश्यक अंग हुए तन के
अभिव्यक्त भाव करते मन के
रक्ता-चित्रित मृदु कर प्रिय का
आह्वान किया करते क्षण क्षण

तन मन में गतिमय अल्हड़ता
मृदु विकच कुन्तलों का सौष्ठव
भ्रू-भंगों को देता छवि नव
जंघा की स्फीत शिराओं में
नव स्पन्दन, दूर हुई जड़ता

ये शुक्ल-पक्ष की शिव रातें
जिनके मृदु अंचल में तारे
तल्लीन हुआ करते सारे
शय्या पर जगती रहती तो
जाना करती मन की बातें

श्वसुरालय से पीहर आती
जितनी भी नव दुलहिन परिचित
उनके सम्पर्कों में वह नित
प्रिय की अनुभूति-मयी बातें
सुन सुन कर अविरल सुख पाती

पीपल, बट सींचा करती है
गर्मी की जलती लूओं में
जब जल जल जाता कूओं में
अंगारों की ज्यों लाल लाल
तप कर हो जाती धरती है

तप में नित देह गलाती है
कातिक में प्रातः स्नान, ध्यान
व्रत, नियम, प्रार्थना, अन्नदान
उत्तम सुन्दर प्रिय मिलें अतः
मन्दिर में दीप जलाती हैं

शुभ, शाश्वत अमर सुहाग मिले
अम्बा-पूजन का ध्यान सरस
आकर्षित करता है बरबस
संगिनियों में हिल-मिल गाती
प्रिय का मधुमय अनुराग मिले

हाथों से दूब उगाती है
दूर्वा सा हरा भरा जीवन
दूर्वा जैसे फैलें परिजन
चिड़ियों को, मोर कपोतों को
निज कर से अन्न चुगाती है

सावन का मास सलौना था
घन - मालाएँ चढ़ आई थीं
ऊपर अंबर में छाई थीं
रिमझिम रिमझिम अमृत-स्वर से
गुंजित घर घर का कोना था

चतुर्थ सर्ग

उनमें से एक सखी बोली
अबकी मीराँ की है बारी
गा दो कोई कविता प्यारी
ऐसा जिससे लहँगा नाचे
दामन टूटे बिखरे चोली

सचमुच कविता की वेला है
सबहीं ही सुनने को आतुर हैं
सब मोर, पपीहे, दादुर हैं
घन ओर सभी के नयन लगे
कामातुर हृदय अकेला है

तुम चिन्तन कवि-सम्मेलन की
तुमको कविता की चाह बड़ी
पर, मीराँ अपनी राह पड़ी
पिय-पथ पर इसका ध्यान लगा
चिन्ता है 'चकला - बेलन' की

सखियों की विविध ठिठोली में
मीराँ ने अपना मुख खोला
भावों का शतदल-दल डोला
गंभीर हुई, स्वर मधुर बना
मानो रस पड़ा निमोली में

परियों का मेला पनघट पर

कोमल मनहर सुर-बालाएँ
लहराती स्तन पर मालाएँ
आती रहतीं, जाती रहतीं
मतवाली झट घट पर घट धर

नीरस से पनघट के चक्के
रूप छटाओं से भौंचक्के
रक्ता - चित्रित - हस्त - स्पर्श से
मृदु रव कर चलते डट डटकर
परियों का मेला पनघट पर

आनेवाले रसिक जनों के
जानेवाले रसिक जनों के
बारंबार नयन मँडराते
कामिनियों के घूँघट-पट पर
परियो का मेला पनघट पर

सब हुईं प्रभावित धन्य कहा
यह अभी अभी जो गाई है
कविता क्या नई बनाई है ?
स्वर क्या है, द्राक्षा सा मधु है
अमृत रस कविता-जन्य अहा !

गायन भी आता, नर्तन भी
वीणा के सप्तक-स्वर-करगत
कविता रचने में मधुमन-रत
गोरा गोरा मादक मृदु तन
मुख नयनों के कल कर्तन भी

तुमको पाकर कृतकृत्य हुए
तेरे चरणों को चूमेंगे
पीछे पीछे ही घूमेंगे
तुम गृह-लक्ष्मी हो, रानी हो
पर 'जीजाजी' तो भृत्य हुए

पर, सुनते हैं, वे काले हैं
चपला ने सहसा व्यंग्य किया
विधि ने ऐसा क्यों रंग दिया ?
पर ठीक ठीक, अन्या बोली
ये राधाजी के ग्वाले हैं

इस पर झट यों भाभी बोली
कलि का तन होता मतवाला
पर अलि का तन होता काला
काले होते देखे भाले
मीराँ बोली बस हद हो ली

सुन्दर सा गीत सुनाती हूँ
कह कर भाभी यों मुस्काई
पर मीराँ कब भगन पाई ?
बोली भी, देर हुई जाती
है काम, अभी आ जाती हूँ

काले प्रिय तो, सुन्दर सजनी
सुन्दर प्रिय तो, काली सजनी

सुन्दर प्रकाश, काली छाया
काला मधुकर, सुन्दर कलिका
सुन्दर निर्झर, काली कमोद
काला जलधर, सुन्दर अवनी

काला विटपी, सुन्दर लतिका
काला धूँआ, सुन्दर ज्वाला
राधा गोरी, काले माधव
सुन्दर निशिपति, काली रजनी

काले सुन्दरता के लोभी
जगती में जितनी वस्तु मधुर
उनका रस ले लेते मधुकर
चींटियाँ वहाँ मिल जायेंगी
मधु होगा जहाँ जहाँ जो भी

बाईजी, यह तो बतलाओ
मीठा मुख कब करवाओगी ?
क्या चुपके यों ही जाओगी ?
इस पर अन्या बोली भाभी !
वर-गुण गाओ, लड्डू खाओ

यह कैसे किसको मधु बाँटे ?
इसकी चोली में दाम नहीं
फिर अभी इन्हें आराम नहीं
वे लायेंगे, तब दे देगी
अब तो इसको ही हैं घाटे

इस पर चपला की बन आई
बोली तुम भी मधु की लोभी
मधु-लोभी परदेशी वो भी
यह किस किस को मधु-दान करे ?
मझधार रही मीराँ बाई

अपरा ने यों फिर बात कही
पहले ही खालें तो खालें
ये काम मिठाई के काले
पग घूमे ज्योंही पर-पथ पर
यह बिगड़ी समझो रही सही

चपला ने फिर मारी बाजी
यह क्यों लोगों को बाँटेगी?
दोने प्रिय के खुद चाटेगी
तुम कौन बीच में हो काजी
जब रहे मियाँ बीबी राजी?

अन्या ने भी अवसर देखा
बोली ऐसा मालुम होता
दम्पति से, जो मैना तोता
हो गया तुम्हारा समझौता
तुम दोनों की खिचली रेखा

मीराँ क्रोधित तत्काल हुई
बस रहने दो ऐसी बातें!
तुम व्यंग्य करो भाते भाते!
उठ पड़ी शीघ्र चल पड़ने को
मुख बदला आँखें लाल हुई

सखियों ने हँस कर पकड़ लिया
हम पर ही तुम क्रोधित हो लो
हम तब जानें उनसे बोलो!
भावी रानी जी रूठ चली
देखो, देखो, कह जकड़ लिया

क्रोधित होने में कारण है
प्रियतम की हँसी उड़ाती हो
काले काले बतलाती हो
अपनी तो सुन लें, पर प्रिय की
सुनने में पाप अकारण है

मीरां

पतिव्रता वधू का धर्म यही
प्रिय का चिन्तन, प्रिय का ध्यायन
प्रिय की कविता, प्रिय का गायन
प्रिय को सबसे ऊपर माने
नव दुलहिन का सत्कर्म यही

यह सब कुछ जाने बैठी है
हाथी के दाँत दिखाने के
हैं और, और ही खाने के
यह तो ठहरा तिरिया - चरित्र
सब जाने, क्यों यह ऐंठी है ?

क्या हाल चाल हैं सुखदा के ?
प्रिय की बातें हम करती थीं
तब वह भी बातें करती थी
श्वसुरालय कभी न जाऊँगी
कहती थी सदा रहूँ मा के

इस पर अपरा हँस कर बोली
है दो मासों से श्वसुरालय
कर रही आज कल मधु-संचय
थोड़े दिन में ही उन्नति की
उसने तो भर ली है झोली

सबने मीठी मुस्कान भरी
नयनों की भाषा तीखी थी
पर मीराँ - मुख - श्री फीकी थी
धरती में गड़ती जाती थीं
लज्जित पलकें अनजान डरी

चतुर्थ सर्ग

वह कविता जरा सुना दो तो
मीरां से भाभी यों बोली
चंचल आँखें हँस कर डोली
आओ, आओ, प्रियतम प्यारे!
वह मोहनवाली गा दो तो!

इनको जगती फीकी लगती
इनका यह ही बस कहना है
जग में थोड़े दिन रहना है
बस इसीलिये ये दूर - दूर
ही ऐसी बातों से भगतीं

सच है दुनियाँ से क्या मतलब?
नटवर, नागर, मोहन, गिरधर
हैं जन्म - जन्म के इनके वर
यह तो उनपर ही लट्टू है
वे भी इससे बिछुड़े हैं कब?

कवि की कल्पना निराली ही
इनकी बातें सिर - पैर - हीन
उनमें ही रहते सतत लीन
ये नहीं समझते, रहे उदर
आहार बिना तो खाली ही

पर उनने तो अवतार लिया
थोड़े दिन में आने वाले
वैसे ही सुन्दर हैं काले
भक्तों की पीड़ा हरने को
उनने मानव-तन धार लिया

बातें अब मत निस्सार करो !
अति लंबा काल व्यतीत हुआ
प्रिय हो प्रिय का क्या गीत हुआ ?
लोगों को तुम पीछे छेड़ो
पहले अपना उपचार करो !

इसका उत्तर देती देती
भाभी चपला से यों बोली
सचमुच ही बहुत अधिक हो ली
होगा विवाह तो इनका तुम
झूठी बातों में क्या लेती ?

आओ न, चलो झूला झूलें
पर, एक बात है यह आली
हम नहीं उठेंगी यों खाली
लड्डू न सही कविता ही हो
जिससे मन नभ को तो छू लें

कविता में भी यह है बन्धन
कविता जो हो रसमय ही हो
प्रिय के प्रति, मधु-संचय ही हो
पीछा छुड़वाने को गाया
परवश मीराँ ने यों उन्मन

दो हृदयों में जगमग जगमग
जली आज है प्रेम-दिवाली

हृदय - आम्र को मंजरियों पर
नव विलास - उल्लास - प्रफुल्लित

कूक रही है फुदक फुदक कर
अभिलाषा-कोकिल मतवाली

दो हृदयों में जगमग जगमग
जली आज है प्रेम-दिवाली

जीवन के नीरस मरुधर में
नव विटपी को स्नेह-नीर से
ओतप्रोत कर आशाओं की
बही आज स्वर्गंगा आली !

दो हृदयों में जगमग जगमग
जली आज है प्रेम-दिवाली

चीर चीर कर तिमिर - निराशा
स्वर्णिल शिव अभिनव किरणों से
नवल प्रेम के उदयाचल पर
उदय मनोरम मरीचिमाली

दो हृदयों में जगमग जगमग
जली आज है प्रेम-दिवाली

अति दूर दूर उड़ता था पट
सब साथ उठीं, झूलने लगीं
अल्हड़ थी, सुध भूलने लगीं
दो-दो तन जोर लगाते थे
थे झाँक रहे उर घट, कटि-तट

सुन्दरता यों ही लुटती थी
गोरा-गोरा निर्मल यौवन
यों लुटा रहा सौरभ उपवन
पेंगों पर पेंग बढ़ाने जब
कंचन-कामिनियाँ जुटती थीं

ऐसे ही रहती चहल-पहल
साथिनें सदा मिलती रहतीं
आपस में ही खिलती रहतीं
मुस्कान बिखेरा करती थीं
बैठी-बैठी या टहल-टहल

★

पंचम सर्ग

★

उन्मनी सी जा रही मीरां वधू ससुराल
हृदय सागर की तरंगों सा बना उत्ताल
रो रही थी, दूर जाना, था नवीन प्रदेश
परिजनों की भावना में संस्मरण थे शेष

एक ओर खड़ा हुआ था मातृकुल, परिवार
दूसरे वे, जो वहन की ले चुके पतवार
खींचता पीछे निरंतर जन्म-भू का स्नेह
धर्म आवश्यक पहुँचना किन्तु पति के गेह

मातृ-हीना थी, न मा का पा सकी थी प्यार
था विदा का विरह, फिर मा-संस्मरण का भार
दे रहे ढाढ़स स्वजन, पर उर रहा था टूट
प्रियजनों के वक्ष से चिपटी, रही कब छूट ?

रुच न पाया मधुर भोजन, चढ़ गया पथ भाल
कह रही थी बात जयमल से लिए जंजाल
देख मैं दो तीन दिन में ही तुम्हारे पास···!
किन्तु लघु भ्राता रहा था रो, न था उल्लास

कह रहा मैं भी चलूँगा ही तुम्हारे साथ
स्नेह से अविराम सिर पर फेरती थी हाथ
वह नहीं कुछ जानता था उस गमन की बात
इसलिये आक्लान्त सा, था खिन्न ज्यों जल-जात

गूँजता करुणा-प्रपूरित था विदा का गीत
परिजनों की कल्पना में, भावना में प्रीत
जा रही दुहिता हमारी आज अपने धाम
पवन ! तुम रहना सुशीतल, शुचि, नहीं उद्दाम

धूल से भरना न, रहना पंथ में अनुकूल
पंथ दिखलाना सतत, यदि कहीं जाएँ भूल
अरुण ! धीरे से उगो, कुम्हला न जाये फूल
अंशुओं पर तान लेना आज जलद-दुकूल

पंथ का तम दूर करना, नभ ! सुनो तुम आज
अंधड़ों को दूर करना है तुम्हारा काज
रात पथ में हो कहीं तो शुभ्र हे उडुराज !
शान्ति देना वर-वधू को और रखना लाज !

चल पड़े रथ-अश्व चंचल, वर वधू थे मौन
एक उत्कंठा प्रणय की थी न जाने कौन !
नारियाँ दो चार करती थी खड़ी यों बात
है रुदन दुलहिन-दिखावा, यह प्रणय का घात

कर रहीं सखियाँ वधू को व्यंग्यमय उपदेश
देश जैसा वेश रखना, है पराया देश
तुम इन्हें आराम देना, एक सेवा-कार्य
मात्र इनकी चिंतना ही, और कुछ न विचार्य

वह न मा का घर, अधिप का देश, मधु का धाम
चाम भी प्यारी सखी री ! और प्यारा काम
और 'जीजाजी' हमारी बहिन है अनजान
भूल हो तो क्षम्य, रखिये-प्रेम पूरित ध्यान

व्यंग्य भाता था न, उसको हर्ष भी, था खेद
प्राण-धन सहवास का कब जानती थी भेद ?
सोचती थी जगत् की कैसी निराली रीत ?
आज उसको लग रहे थे भाव सब विपरीत

कौन पाले, कौन पोषे, भावना में भ्रान्त ?
अपरिचित, अनजान होना प्राणधन, प्रिय कान्त
बढ रहे थे ऊँट, गज, हय, रथ, पदाति अबाध
सम्मिलित स्वर बना कोलाहल, तुमुल था नाद

आ रहा उद्यान था परिचित पुराना मीत
झूलते झूले निरंतर और गाते गीत
उड़ रहे थे भ्रमर, कलियाँ सुध रही थीं भूल
तितलियों से कर रहे क्रीड़ा निरंतर फूल

वल्लरी-भुज-पाश में था बद्ध विटपी गात
विहग हँस हँस कर परस्पर कर रहे थे बात
चपल शाखा-मृग सतत अठखेलियों में लीन
तैरती थीं नीर-कुंडों में सुचंचल मीन

पवन के संकेत पर थे नाचते मृदु पात
अंशुओं के साथ मुस्काते नवल जलजात
हरे भरे प्रसन्न तरु की छाँह का सुख और
झुरमुटों में कर रहे विश्राम सुन्दर मोर

सजल दूर्वादल सघन विश्रान्ति का आगार
दिव्य सौरभ हर रही थी वाटिका का भार
फुनगियों पर फल लदे से झाँकते थे दूर
रचित निर्झर शुद्ध जीवन बाँटता भरपूर

घोंसलों में गुनगुनाते विहग-शिशु सुकुमार
मुक्त विस्तृत व्योम, सुरभित मंद-मंद बयार
दूर कुछ ही दीखता पल्वल अकृत्रिम शान्त
थी घनी छाया वटों की दूर दूर सुकान्त

छाँह शीतल हर रही थी चतुष्पद-कुल-घाम
हो रहा नर्तन तरंगों का सुखद अविराम
कूल पर आ भूल जाता नीर हृदय-प्रवाह
झूलता मझधार, मिलती जब न कोई राह

दूर आगे थे क्षितिज के पास टीले मौन
स्वर्ण-धूल ललाम, उपमा इस जगत् में कौन ?
झाँक कर दिनकर-किरण जब फेंकती मुस्कान
दीखता प्रत्यक्ष भू-स्वर्गीय स्वर्ण-विहान

व्योम में छायें जलद, जब छिप चले उडुराज
देख प्रिय को नीरसा सारे नयन-तम-साज
प्राण-धन-संदेश सा नूतन मधुर घन-गीत
हर्ष-विभ्रम नववधू सी हो चले भू प्रीत

व्यथित सारस से निरंतर नवलतम घनश्याम
श्रान्त होकर भी गगन में लें न कुछ विश्राम
निकट आ चुपके स्थिरा के स्पर्श करते गात
दौड़ती विद्युत्, हँसें कुच-तुंग-टीले दांत

हस्त-कुच-मर्दन-सुलज्जित, क्रुद्ध सी गतधाम
भू लगे ज्यों स्मर-प्रपीड़ित-नवल-प्रियतम-वाम
देख प्रिय के पास भू को बोलते हँस मोर
व्यंग्य में अविरल चिढ़ाने प्रखर करते शोर

व्यंग्य-विह्वल बर्हियों की केकियों का हास
मेकियाँ सुनतीं चिढ़ातीं, बिखरता उल्लास
वल्लियाँ नवयौवना जब फूल जायें झूम
पुष्ट विटपी से चिपक लेतीं अधर-रस चूम

अनिल-स्मर जब जलधरों के मार देता बाण
सुख अलौकिक प्राप्त कर तल्लीन होते प्राण
नाचती जब नागिनी सी दिव्य भू की रेणु
शिव स्वरों में घन-सँपेरा प्रिय बजाता वेणु

ताप-तप्ता नीरसा को दिव्य आशा-धूल
पवन-झोंटों में मचलती प्रिय-भुजा में झूल
घन-रसा का चेतना-प्रद जब मिलन अभिराम
तब यहाँ के दृश्य कितने भव्य और ललाम ?

चाँदनी रातें यहाँ की और शीतल प्रात
धूम-धूल-भरी विमल संध्या, सभी कुछ मात
चल रहा था रथ, हृदय के अश्व भी बलवान्
सोचती अनजान मीराँ, घूमता था ध्यान

हरित-वसना भूमि, अंचल में रसों का राग
क्षितिज तक फैला रसा का हरा भरा सुहाग
सस्य-झुरमुट में कहीं थे कृषक गाते गीत
भावना के, कल्पना के नये स्वर, संगीत

बाँस के उस पोर से निःसृत अनाहत नाद
कौन वह, जिसको श्रवण कर कुछ न आई याद ?
थे मधुर वे गान, जिनमें स्वयं पूर्ण विभोर
क्षितिज पर रवि झाँकते थे भव्य कैसा भोर ?

कृषक बालाएँ निरंतर थीं परिश्रम - लीन
पूर्ण गोलाकार तन, सुन्दर चरण, करपीन
बैल, गायें ले रहे संतोष की सी साँस
वत्स भरते चौकड़ी, सब चर रहे थे घास

कृषक-कल्पना शष्प, धान्य पर
मृदु घन-माला सी लहराती
विस्फारित दृग मौन एकटक
शाद्वलता में ही विभोर बस

क्षेत्र-काव्य के पृष्ठ-पृष्ठ में
नव जीवन का भरा मधुर रस
मानस के शतदल - पर्णों पर
कनक-किरण करती अटखेली

नव मरंद - सौरभ - विभोर प्रिय
नाच रही अलिनी अलबेली
शृंग, शफों से रेणु उड़ाते
अनड्वान् शस्यादन - तन्मय

भीम गरजते भर छलांग चल
शकट, क्षेत्र के स्तंभ, जयाजय
शिव निहार भर प्यार विहँसता
होता सुख से मानस शीतल

होगा घर घर मंगल गायन
शान्त, सुखी, अभिराम मही-तल
सोच सोच होता अनुपम सुख
अंतराल में सत्य प्रभाती

गुनगुनाने में लगी थी गान, वह अनजान
प्राकृतिक प्रिय दृश्य बरबस खींचते थे ध्यान
किसी झुरमुट से निकल कर शशक जाते भाग
दूर मृग के झुण्ड करते थे जुगाली जाग

नवल अपने शावकों की उछल कूद ललाम
देखते थे मौन मृग कुल हर्ष से उद्दाम
वनचरों का किटकिटाना भी लिए आल्हाद
प्रतिध्वनित वन, दूर तक ही गूँजता था नाद

हँस रहा था समय अंतर में लिए अनुराग
अन्न का सुकुमार यौवन खेलता था फाग
मुक्त पर्णों पर तुहिन के कण रहे थे खेल
बाल-रवि को अंशुओं का था अलौकिक मेल

वल्लियाँ ककड़ी, मतीरों की रही थीं नाच
पीत फूलों की मृदुलता से रही थीं राच
कृषक-बाल उड़ा रहे थे पक्षियों को घूम
स्वर निराला गूँजता था व्योम का उर चूम

पक्षियों के रव अमर-पुर की सुखद झंकार
क्षुब्ध-पावस-सरित् की सी कलित, गुंजित धार
गूँजता था किसी विरही के हृदय का प्रान्त
शान्त जिसकी रागिनी पर झूम जाता स्वान्त

जग कहता, घन पर-हित-दानी
पर घन अपने लिए बरसते
विरह-व्यथा से ताप दग्ध ये
जीवन में एकाकी नीरव

नीरस, उन्मन और तृषाकुल
हो जाते सूना लगता भव
अंतराल में तिमिर-रश्मियाँ
आशा-नीलोत्पल मुद्रित कर

कृष्णाञ्चल सी कण अणु अणु में
कनक-रश्मि को अच्छादित कर
अमर बेल बन, सघन फैलता
और वियोगी ये हो जाते

करुणा-पूरित विकल स्वरों में
शाप-युक्त विरही से गाते
हृदय पिघलता चीत्कार कर
चू चू पड़ते नयन तरसते

जग कहता, घन परहित दानी
पर घन अपने लिए बरसते
पर-पीड़ा से सुखी जगत् की
किन्तु निराली कैसी बातें ?

घन-दृग-सीकर को कह देता
राग-रँगीली शिव बरसातें
क्योंकि इसी से ही तो इसके
सारे सुख-साधन जुट पाते

जिनसे इसको रहे सुभीता
बस उनसे ही रखता नाते
घन की गहरी विरह-व्यथा को
और संस्मरण यह क्यों जाने ?

कभी चिन्तना-विषय बने क्यों
घन के वे अतीत के गाने ?
घन तो अपने लिए तरसते
जन पर अपने लिए सरसते

सोचती थी वह, हृदय गद्गद् बना आक्रान्त
हरित-तृण-निर्मित कुटी होवे यहाँ पर्यान्त
लोट जाऊँ मृदुल धरती पर व्यथा सब भूल
और आगे हो सरित्-संगम-चिरंतन-कूल

निकट हों खग-कुल, हरे हों नीड़ मृदु, अम्लान
गूँजता हो विहग-रव से सुरभि-मय उद्यान
और कोई भी न हो, वीणा रहे अवदात
प्रिय सुनें, कह दूँ हृदय की मैं मनोरम बात

देखने लगती कभी 'नाइन' कहीं विपरीत
इसी अंतर में रसिक की पूर्ण होती जीत
हाथ चुपके से दबा देते वधू का मौन
इस अलौकिक स्पर्श का सुख कह सकेगा कौन ?

उमड़ता था हृदय, जिस में प्रणय का संसार
मौन-कंपन, लहर से ज्यों क्षुब्ध पारावार
चाहते थे स्वान्त छू डालें क्षितिज के प्राण
व्योम के उडु-गण चुनें, नंदन विपिन की घ्राण

क्षुद्र कंदुक सी बनी भू का न था कुछ मोल
कर रही थी जलधरों पर कल्पना कल्लोल
चाहता जी अंक में जाऊँ रसिक के लेट
सोचते प्रिय, लूँ भुजाओं में शरीर समेट

दो मिलन-आतुर हृदय में प्रगति का उल्लास
कामना-सतरंगिणी में वासना की प्यास
सूत्रधार बना हुआ मन खींचता था तार
नाचतीं अभिराम पुत्तलियाँ सतत मझधार

थे नयन नत, लाज आती थी रही अनजान
क्षुद्र गति-विधि भी हृदय तक खींच लाते कान
स्वेद-कण संकेत कर देते पिपासा भीम
प्रथम संगम की कहानी अकथनीय, असीम

प्रिय त्वरित आँखें बचाकर पूछते क्या प्यास ?
भूख तो, दो ग्रास ले लो, फिर सरकते पास
डूब जाती लाज में वह और रहती मौन
गान तन्मय था बराती कौन जाने कौन ?

आज विटप में शिव किसलय हैं

अनुपम सुख गायन मर्मर में
मादक लय नव नर्तन-स्वर में
पुलकित प्रतिपल नववय चंचल
शाखाएँ कल अभिनयमय हैं
आज विटप में शिव किसलय हैं

सुरभित, गद्गद् विमल पवन है
शाखा पर वह विहग-भवन है

दुखकर पीड़ाप्रद आतप से
जो पल पल प्रतिपल निर्भय है
आज विटप में शिव किसलय हैं

छाया में अंकित मुस्कानें
खग-विहगी के ये मधु गाने
आज हृदय से दूर निराशा
जीवन की यह स्वर्णिम जय है
आज विटप में शिव किसलय हैं

आ गई थी गाँव की सीमा रुके गज, यान
ग्राम - सीमा - देव का करणीय था सम्मान
उतर कर श्रीफल निकाले, देवता की भेंट
हों प्रहर्षित वर वधू के ताप दें वे मेट

दूध से कच्चे खुले श्रीफल, मधुर था स्वाद
बाँट डाला गया झट सबको समान प्रसाद
बात अपनी कर रहे थे वृद्ध और अधेड़
मित्र - गण वर के लगे करने सखा से छेड़

देव ने भी दे दिया आशीष, अपना प्यार
अब तुम्हारी घी भरी पाँचों, तुम्हीं आधार
नमक खाया है तुम्हारा दिन कई भरपूर
अतः मंगलमय दिवस हों, वर न थे तब दूर

किन्तु भाभी मेड़ता की कम न यह भी आप
भक्त गिरधर की सुनी, कुछ दे न डाले शाप
हम लगें देवर, हमारा भी जरा अधिकार
नई भाभी को हमारी ओर से भी प्यार

छोड़ते थे मित्र कितने ही अनोखे तीर
नव वधू मीराँ रही अनजान किन्तु अधीर
अधिक तीखे व्यंग्य में भी था भरा प्रिय प्यार
मौन, थी लज्जा, हुआ अज्ञात हर्ष अपार

द्वार गृहलक्ष्मी खड़ी थीं, आरती का साज
काष्ठ-पीठ ज्वलंत दम्पति से रहा संभ्राज
मोतियों का चूर्ण, कुंकुम, भाल पर छविमान्
स्वर्ण की कलशी, बधाई के सुमंगल गान

पग न पड़ते थे धरा पर, नाचते थे रोम
हर्ष गद्-गद् मा, हृदय था बह रहा बन मोम
लग रहे थे आज के दिन क्षुद्र तीनों लोक
वधू चरणों में पड़ी थी, दे रही थी 'धोक'

रमणियाँ आनन वधू का देखतीं उपहार
बार बार सराहना करतीं, समूह अपार
कह रहीं सखियाँ परस्पर, भाग्य की सब बात
चंद्रमा को चीर कर विधि ने बनाया गात

चाँद सी दुलहिन, चतुर, इतना अधिक उपहार
दासियाँ, गज, हय, रथों का क्या कहीं कुछ पार ?
आ रही जी में कि बैठा लें वधू को पास
नासिका, भौंहें, नयन, मस्तक, अधर स्मितहास ?

नाम मीराँ, नीरजा की मुकुल सा अभिराम
बाल-रवि की अंशुओं के जाल सा छविधाम
फेन सा उज्ज्वल, मराल-कुमार-चंचु-समान
मुखर पावस-जलधरों का सप्तरंगा गान

केश, सावन और भादों की तमी का सार
कुन्तलों के भ्रमर, ज्यों सर में तरंग-विहार
शीशफूल, विभावरी में तारकों का जाल
वेणियाँ, ज्यों शेष की प्रिय पत्नियाँ विकराल

भाल की बिन्दी, स्फटिक के अजिर में ज्यों दीप
कर्ण-संपुट, स्वाति में ज्यों तैयारी हों सीप
कर्ण की मणियाँ, ग्रहों की झिलमिलाहट दूर
संतरण ज्यों मीन का मझधार में भरपूर
मंजु भौंहों में पवन उनचास का उल्लास
इन्द्र के नन्दन विपिन की सुरभियों सा श्वास
नयन की आभा, गगन में चन्द्रिका का स्फार
नासिका में स्पष्ट अंकित शुक, गरुड़ की हार

नयन-कोर, तुहिन-कणों की देह के मृदु बाल
नाक-मुक्ता, हंस ज्यों ले चंचु-बीच मृणाल
अधर, चलदल-पल्लवों का अनर्गल उन्माद
दंत-अवली, संगमरमर का मधुर आल्हाद

हास्य, सुरपुर - अप्सराओं की अनंत उड़ान
मधुर वाणी में त्रिवेणी का अलौकिक गान
मुक्त जिह्वा, अरुण - उत्पल - जल - विहारी पात
चिबुक, श्री-फल के हृदय सी सदल, मृदु, अवदात

गोल-गोल कपोल, ऊषा-लालिमा, ज्यों भौम
सुघड़ मुख-मंडल, उदय ज्यों पूर्णिमा का सोम
चारु अवगुंठन, गगन में जलद्-झुंड-वितान
कम्बु-सी ग्रीवा, चपल लावण्य का अभिमान

बाहु, मंजुल कल्प-तरु-शाखा-समान सुडौल
कान्त जिसके पाश में भू-स्वर्ग जाये डोल
गौण किंचित् स्पर्श भी हिम-अद्रि जैसा वास
बार-बार लपेटने पर भी न जाती प्यास

वलय में गन्धर्व-कुल के नर्तनों का नाद
स्वर्णमय भुजबंध, यौवन के तृषित उन्माद
मृदुल अंगुलियाँ, कलाधर-तूलिका-समुदाय
अंगुलीय, प्रभा-पताका, दिव्य-ज्योति-निकाय

हस्त की अन्तस्थली, कौशेय के स्तर पीन
चारु रेखाएँ, लता के तन्तु-बाल नवीन
मेंहदी, नख-लालिमा में प्रणय का अनुराग
कर, भुजाओं का मनोरम कला-पूर्ण विभाग

स्कन्ध युगल, मरालिनी की पाँख से चितचोर
कंठमाला, कौमुदी की आत्मा का भोर
मौक्तिकों का गुच्छ, मानस के हृदय का नीर
तार, वीर बहूटियों का तन लिया हो चीर

स्तन, छलकते से सुधा के कुंभ की झंकार
विश्वभर के काननों के सुमन-रस-आधार
जलधरों के प्राण, यौवन-पूर्ण के संकेत
कूर्म-कुल काठिन्य, संजीवन-जड़ो के चेत

स्तन, हीरक से भरे हों कलश ज्यों कलधौत
व्योम ओर उतावले उड़ने यथा सुकपोत
विल्व-विटपी पर लदे ज्यों नव्य फल विस्तीर्ण
पास पास विभक्त ज्यों श्रीफल मधुर, उत्तीर्ण

अग्रभाग, रसाल-दल पर हो मधुर गुंजार
तुंग टीलों पर करें ज्यों कृष्ण हरिण विहार
बीच, अन्तर-प्रान्त में प्रिय सरित् सा भूभाग
गूँजता पाने जिसे त्रय-लोक का अनुराग

एक मृदु कंपन हृदय का, भूमि का भू-चाल
स्वप्न-क्रीड़ा, माधवों के हर्ष का जंजाल
कल्पना, अमरावती की कोकिला के गीत
हर्ष, क्षुब्ध-समुद्र-मंथन में सुरों की जीत

कामना, अमराइयों में व्योम श्री का रास
भाव, नीरज मुकुल में शत मधुकरों का वास
राग, सरसिज-नाल में नव नाभिजों का स्वान्त
बुद्धि, अगणित दिनकरों की अंशु का मध्यान्त

भावना-अभिव्यक्ति, मन्वन्तर-अयुत-संसार
सत्य अनुभव, कंचनों का अग्निमय आकार
और श्रद्धा, क्षीर-सागर के हृदय की थाह
काम, स्मर के पुष्प-बाणों की सहस्रों दाह

एक उत्कंठा, अगस्त्यों का पिपासा-ताप
लाज, रिमझिम-बिन्दुओं का मधुरतम आलाप
प्रेम-नर्तित विद्युतों के निर्झरों की धार
शान्ति, सुरधनु के हृदय के परिष्कृत उद्गार

चोलिका, शृंगार-रस के रंग का विस्तार
दामनें, कादम्बिनी की छाँह का संचार
क्षीण कटि की प्रिय छुँटाई में कला का हाथ
पृथुल, वर्तलतम, नितंबों पर सभी नतमाथ

करधनी, ज्यों गह्वरा से गोमती निष्क्रान्त
दिव्य अंतर्-पट, नवल कवि का मधुर एकान्त
जाँघ में ज्वालामुखी के स्पन्दनों का भास
मृदु लुनाई, स्नेह का ज्यों कदलियों से व्यास

गोल पिंडलियाँ, शची के हर्म्य की सोपान
नूपुरों में, पायलों में, विश्व का अवमान
नाग सी गति, चमक में पवमान का मृदु भार
पूर्ण नख शिख, रुक चले सब विश्व का व्यापार

भाल गर्वोन्नत, यथा आकाश में हिमवान्
कुच-कलश से कटि-तटों तक शिव त्रिवेणी-तान
कर युगल, प्राची, प्रतीची के सुरम्य विभाग
लंक के पश्चात् सागर की सुधा का राग

कर रही थी समवयस्का नारियाँ उपहास
सास से, जिसका हृदय था छू रहा आकाश
तालियाँ अब नव वधू को सौंप दो, सब दाम
तुम करो अब 'राम राम' विलम्ब का क्या काम ?

यह न छोड़ेगी भई, यह बड़ी चिप्पू वाम
आज भी इसका हृदय कब चाहता विश्राम ?
वृद्ध होने जा रही, पर मन न बूढ़ा जीर्ण
कामना-षट्-शास्त्र में यह सर्वश्रेष्ठ, प्रवीण

बाँधना अच्छा किसी का घर, रही तुम तोड़
ना, बहिन ! तुम तो कदापि न कार्य देना छोड़
यह नहीं आचार्य, देवर का सभी कुछ दोष
मन नहीं उनका ठिकाने, लूट लेते कोश

आपको कैसे पता जी ! मनचले वे चोर ?
इस घरेलू बात में षड्यंत्र कोई घोर
वे रहे देवर, इधर भाभी चटोली नार
ज्ञात होता सारिका-शुक के हुए दृग चार

भाभियाँ वर की उधर यों कह रही थीं बात
चाहतीं मिष्टान्न, कर देंगी नहीं उत्पात
यह हमारे बात बस की, हैं हमारे दाँव
आज देवर जी ! हमारे पूज्य होंगे पाँव

एक भाभी ने कहा यों, बात यह निस्सार
पूजकों को कौन देता है, यहाँ उपहार ?
भक्त जब पहुँचे हुए, भगवान आगे व्याप्त
बीच में पंडे कभी क्या कर सकें कुछ प्राप्त ?

एक भाभी ने कहा, तुम मिल गईं क्या आज ?
खीर में मुनक्का बनोगी, है हमारा राज
कुछ न पल्ले पड़ सका तो ये करेंगे याद
वह हमारी बन्दिनी, हम तो करें आजाद

कोकिला-स्वर छोड़ केवल सुन रहे हैं 'काँव'
गुरु खड़े, गोविन्द भी, किसके पड़ूँ मैं पाँव ?
सोचते हैं, एक भाभी ने चलाया तीर
हँस रही थीं भाभियाँ, देवर अमंद अधीर

सोचती थी बद्ध-सी मीराँ वधू अनजान
आज कैसे कर सकूँगी ध्यान, गिरधर-गान ?
और जयमल कौन जाने रो रहा था शान्त ?
कुछ वहाँ न अनिष्ट होवे, हे प्रभो ! मन भ्रान्त

★

षष्ठ सर्ग

★

श्याम-सलोने तन पर शोभित
अरुण शाटिका अभिनव
रक्त नयन इंगित करते, पी
रक्खा यौवन – आसव

अंतर्मन – उल्लास – पूर्णता
से जिसका पुलकित तन
मत्त मतंगज सी मदमाती
आती रमणी नूतन

अपने विस्फारित नयनों से
मोर देखते चिन्तित
गमनशील, अपने आवासों
के उन्मुख ही, सीमित

अपने अपने नीड़-पुटों में
बैठे नीरव नभचर
बतलाओ तो कौन, कौन यह ?
पूछें प्रश्न परस्पर

उड़ी शफों में नभ - मंडल में
छाई मिट्टी मैली
कौन आ रही पूछ रही हैं
निज निज धेनु-सहेली

कोमल-रमणी की प्रिय छवि पर
मोहित तरु अनजाने
विहग-कुलों के प्रश्नोत्तर पर
ध्यान – मग्न मनमाने

पुष्ट उरोजों के दर्शन से
जिसके रोम प्रहर्षित
धूम्र पान कर नभ-रमणी को
चूर रहा आकर्षित

जय संध्या माता की ध्वनि के
साथ जल उठे दीपक
घंटा – नाद समाप्त हुआ तो
भक्त – जनों की चकचक

संध्या को पहिचान विहंगों
ने कीं पाँखें निश्चल
ईश्वर - चिन्तन में अति तन्मय
हुए मूँद कर दृग चल

मौन देख निज आश्रित जन को
तरुण, प्रौढ़, सब नूतन
ध्यान-लीन योगी से नीरव
हुए विटप चिन्तन-मन

देख सजनी, मौन रजनी
विधु-विरह से हो रही क्यों ?

मन हटा शृंगार से रे !
वेदना से व्यथित, चिन्तित

मीरां

कृष्ण अंचल में छिपा मुख
उन्मनी हो सो रही क्यों ?
देख सजनी, मौन रजनी
विधु-विरह से हो रही क्यों ?

मिलन – हर्ष – प्रगाढ़ – निद्रा–
स्वप्न में छाया अँधेरा
चिर निराशा से प्रबल–
उल्लास उर का धो रही क्यों ?

देख सजनी, मौन रजनी,
विधु-विरह से हो रही क्यों ?

भावना के स्रोत से रे !
सुखद संस्मृतियाँ प्रणय की
चपलता, उन्माद, यौवन
क्षणिक यों ही खो रही क्यों ?
देख सजनी, मौन रजनी
विधु-विरह से हो रही क्यों ?

अल्हड़ चंचल दुलहिन मीराँ
ज्यों प्रकाश की छाया
शिशिर-समीरण-दोलित लतिका
सी गति-तन्मय काया
प्रियतम-मोहक-पीन-वक्ष की
भावमयी अँगड़ाई
छुईमुई की कोमल शाखा
सी पलकें सकुचाई

नृत्य-विभोर शिखी से मन की
स्वर-भीनी अभिलाषा
पावस-नद के मुक्त नीर सी
अंतर्हित मृदु भाषा

महा अब्धि की क्षुब्ध हिलोरों
सी लिप्साएँ आतीं
धूप – वर्तिका - धूम - शिखा सी
उर सुरभित कर जातीं

मरीचिका में मृग-शावक ज्यों
चिंतन अति भरमाया
दूर-दूर के दो हृदयों में
एक गीत लहराया

प्रणय-कथा में भूल रहे थे
नूतन साजन – सजनी
महा निराशा, आनन था नत
बैठी थी चुप रजनी

मन-अंबर में आशा - पंछी
कभी-कभी उड़ जाता
निरख निराशा-तिमिर-घटाएँ
पीछे ही मुड़ आता

दीर्घ साँस ले नभ-शय्या पर
शिथिल हुई, पछताई
मुरझाया था दिव्य मनोहर
आनन, ज्योति न छाई

चाव-चन्द्रिका से हर्षित-मुख
जब रजनी-पति आये
प्राण-वल्लभा को पाया
अति निद्रा में भरमाये

मौन प्रेरणा से निशिपति ने
मंथर चरण बढ़ाये
रजनी-पति को मुग्ध जान कर
तारे मौन लजाये

मीराँ

तुहिन - दिव्य - कण - मुक्ता-ग्रंथित
हरी दूब का प्रांगण
बिखर रही थी मुक्त वल्लरी
जिसमें प्रिय आकर्षण

सरल, नवल, मंजुल हरीतिमा
पीवर तन में भासित
सौरभ चारों ओर व्याप्त थी
घूम रही निष्कासित

सुन्दर थी वह वेला, नभ में
छिटक गई थी चन्द्रा
हँसती थी रजनी, कलिका की
दूर हो गई तन्द्रा

स्मित-आनना चपल शैवलिनी
रह रह मुस्काती थी
बिखर रहा उल्लास चिरंतन
नव लहरें गाती थीं

निशीथिनी के मधुर हास्य से
सब निश्शब्द विहग थे
शैवलिनी की मधुर तान से
नीरव, स्तब्ध विटप थे

सजनी, हर्षित क्यों अंतस्तल ?

यौवन का मधुर मधुर स्पन्दन
अंतर् से अंतर् का बंधन
बाहों में बाँहें, तन में तन
स्वर्णिम; मधु सपनों में कलरव
मन थिरक रहा है क्यों पल पल ?

संफुल्ल - वाटिका - तुल्य हृदय
जिसमें मृदु किसलय ही किसलय
मंजरियों का मादक अभिनय
जलधर-मराल-दल पर चढ़कर
गद्‌गद्‌ हो जाता क्यों चंचल ?

रजनी के सुन्दर तारों में
विधु के कमनीय-विहारों में
शैवलिनी की झंकारों में
आकर्षण नया नया, मधुमय
प्रिय क्यों आमंत्रण का अंचल ?

मैं गाऊँ तुम सुनती जाओ !
उद्यान विमल, नभ प्रांगण में
उड़ इधर कभी, उड़ उधर कभी
तिनके मृदु नीड़ बनाने को
मैं लाऊँ, तुम बुनती जाओ !
यों उसे रिझाते थे प्रियतम
मुस्काते थे वे पुनः पुनः
मैं अपने मन की कहूँ सभी
तुम चुन चुन कर गुनती जाओ !
हम जीवन को कृतकृत्य करें
हम नृत्य करें रुमझुम रुमझुम
तुम चपला नर्तित अंग अंग
मैं वर्षोन्मुख वन संग संग
तुम निर्झरिणी, मैं शैल-शृंग
मैं इन्द्र-धनुष, तुम विविध रंग
तुम स्वर्ण-उषा, मैं वन विरंग
तुम जलज-मुकुल, मैं विकल भृंग
मैं व्यथित हृदय, तुम नव उमंग
तुम मधुर विपंची, मैं मृदंग

मीरां

तुम दीपित मणि, मैं विष-भुजंग
मैं सागर, तुम फेनिल तरंग
तुम ज्वाला, मैं निर्मल स्फुलिंग
तुम मृग-तृष्णा, मैं चल कुरंग

तुम मैं, मैं तुम, तुम मैं, मैं तुम
हम नृत्य करें रुमझुम रुमझुम

सुधबुध भूले कहते थे प्रिय
जैसे भावाकुल घन
नये अपूर्व अलौकिक सुख में
तन्मय मीराँ का मन

कितना मादक, कितना सुन्दर
कितना मधुमय जीवन ?
मन की इच्छा यही, सदा हो
तुम, मैं, चिर मधु यौवन

जीवन में मधु भरा न हो तो
पात्र रहेगा खाली
अंबर का जोवन नीरस यदि
हो न खगों की जाली

अखिल चराचर ही मधुमय है
मधुमय जग का कण कण
पीने वाले ही पीते हैं
सुधा बरसती क्षण क्षण

वह उद्यान नहीं है जिसमें
सुमनों के घाटे हों
पत्ते सूखे बिखर रहे हों
डंठल हों, काँटे हों

कोटर में कलरव न रहे तो
नीरसता आयेगी
सुन्दरता, मृदुता, हरियाली
कैसे रह पायेगी ?

नव रसाल की मंजरियों पर
कोकिल का मधु कूजन
मधुमय, अभिनव जीवन का ही
होता है नित पूजन

अलियों की गुंजार वहीं है
कलियाँ जहाँ विकसतीं
मधु दे देतीं, मधु ले लेतीं
सतत हँसातीं, हँसतीं

मधु का क्रय-विक्रय ही जीवन
पर होवे तन्मयता
बन्धन, क्रन्दन, व्यथा न होवे
पीने की निर्भयता

यौवन के सुन्दर प्याले में
मादकता का नर्तन
अखिल चराचर की आकुलता
झंझा का परिवर्तन

रीति निराली है यौवन की
यौवन स्वयं निराला
यौवन के प्रत्येक श्वास में
भरी हुई है हाला

उस हाला को, मधुबाला को
जो नर पी जाते हैं
उनका जीवन तृप्त, जगत् में
लौट नहीं आते हैं

मीरां

नव यौवन की गलबाँहों का
जिनको स्वाद नहीं है
उनका जीवन ही निष्फल है
कुछ आह्लाद नहीं है

यौवन, जिसमें कालकूट भी
अमृत बन जाता है
हंत, हंत, पर यौवन थोड़े
दिन ही रह पाता है

यौवन चंचल क्षणभंगुर है
अंधड़ सा आता है
जिसमें झूम झूम कर मानव
अन्धा हो जाता है

ऊषा की लाली सा जीवन
चुम्बन सा यौवन है
अलि के गुंजन सी तन्मयता
मृग - तृष्णा सा मन है

आओ, आओ, यों न गँवाओ
थोड़े से यौवन को
छोड़ चला जायेगा यों ही
एक दिवस इस तन को

अभिलाषाएँ तृप्त रहें तो
जीवन सुख पाता है
नहीं, चिन्तना बस जाती है
भूखा रह जाता है

भूखे जीवन की अभिलाषा
भूख - भूख चिल्लाती
एक बार की भूख निरंतर
सौ - सौ भूख जगाती

तृप्ति नहीं तो जीवन कैसा ?
यौवन भी जीवन का ?
प्राणवल्लभे, चलो बसायें
नया जगत् हम मन का

इस तृष्णा-ज्वाला से जीवन में
क्यों अवसाद बसायें ?
मधु है, प्याले हैं, पानक भी
क्यों न इसे पी जायें ?

जग भौतिक है, नाशवान् है
सत्य दूसरा जग है
जो यह कहते, भ्रम में हैं वे
निराधार नभ-खग हैं

मिथ्या पर सोने की कलई
वे झूठी करते हैं
यौवन वाले उनके पीछे
पीछे कब मरते हैं ?

जो मधुवाले मानव उनके
पीछे हो जाते हैं
जीवन भर पछताते रहते
तम में खो जाते हैं

जिनकी भौतिक अभिलाषाएँ
होती तृप्त नहीं हैं
मिथ्या, कल्पित, अन्य जगत् में
होते लिप्त वही हैं

कैसा विस्तृत, मधुमय जग है ?
इससे परे न कोई
इस जीवन की अभिलाषाएँ
नहीं न जाएँ ढोई

मीराँ

मिथ्या है संसार, भ्रान्ति है
जो ऐसा कहते हैं
क्या वे जीवन भर इस जग में
यहाँ नहीं रहते हैं?

भौतिक तन का भौतिक मन है
भौतिक बाहर भीतर
क्या भौतिकता के अभाव में
कोई रह मही पर?

यौवन की सीमा में अन्तर-
बाहर भेद नहीं है
अल्हड़पन है, तन्मयता है
पीड़ा, खेद नहीं है

और सुनो, यौवन के जग में
मख, तप, जाप नहीं है
धर्म नहीं है कर्म नहीं है
ईश्वर, पाप नहीं है

प्रिय की बातें आकर्षक थीं
मीराँ हुई प्रभावित
किन्तु मात्र भौतिकत से ही
उसका हृदय न प्लावित

भौतिकता ही क्या सब कुछ है?
कभी तृप्ति भी जीवन?
आत्मा के शाश्वत हिमाद्रि से
भी क्या है ऊँचा मन?

तृप्ति मृत्यु है, चिर अभाव ही
जीवन का आलंबन
अल्हड़ यौवन की मादकता
मृगतृष्णा है बन्धन

भौतिकता आधार हमारा
है यह सत्य चिरंतन
किन्तु वहाँ तक, जहाँ-जहाँ यह
क्षण-भंगुर नश्वर तन

यदि भौतिकता ही जीवन तो
नर क्यों मर जाता है ?
सब कुछ साधन रहते, फिर क्यों
लौट नहीं पाता है ?
यौवन की अभिलाषाएँ तो
बादल पर बसना है
क्षणिक-प्रभंजन-अश्व-पीठ पर
चढ़-चढ़ कर हँसना है

"यौवन की अल्हड़ता, मस्ती
जिसमें पाप नहीं है"
क्या उसमें अति निंद्य वासना
का आलाप नहीं है ?

तृप्त सभी भौतिक अभिलाषा
ऐसा कौन यहाँ है
पूर्ण सनातन यौवनवाला
प्राणी कौन कहाँ है ?

हमने तो यौवन के भोगी
सब रोते देखे हैं
और अन्त में आत्मिक सुख में
लय होते देखे हैं

प्राणी स्वतः अतृप्त, तृप्त वह
कैसे हो पायेगा ?
तृप्त बन गया तो क्या पीछे
जग में रह जायेगा ?

तृप्त मनुज ही अन्य लोक की
चिन्ताएँ करता है
इस भौतिक जग से जब उसका
हृदय नहीं भरता है

जब अंधड़ सा ही जीवन तो
यों क्यों इसे गँवाये ?
क्यों न लीन होवें असीम में ?
जीवन सफल बनायें

बचपन में कुछ ज्ञान न होता
व्यथा अवस्था ढलती
यौवन में कुछ करें नहीं तो
इच्छाएँ कर मलतीं

एक मनुज ही सत्य सभी पर
यह विचार सुन्दर है
पर वह नभ, भू, चन्द्र, सूर्य क्या
रच सकता जो भर है ?

उस असीम की सुन्दर रचना
नर को कह सकते हैं ?
स्मरण रहे, विभु के इंगित पर
हम सब बह सकते हैं
जिस दिन मानव तृप्त बनेगा
जग यह जल जायेगा
उसके अहंकार का झोंका
सब को मल जायेगा

ऐसी तन्मयता, अल्हड़ता
सीमा झाँका करती
मोह-यष्टिका से विवेक को
तन में हाँका करती

भौतिकता से विमुख नहीं मैं
पर वह नहीं सहारा
वह तो साधन, साध्य नहीं वह
वह कब लक्ष्य हमारा ?

नश्वर तन की चल इच्छाएँ
मन को खींचा करतीं
काम, मोह, मद, द्वेष, क्रोध से
जीवन सींचा करतीं

जो विवेक की तन्मयता में
डूब नहीं सकते हैं
वे इस भौतिक, नश्वर जग से
ऊब नहीं सकते हैं

जल-कुंभो के प्रतिबिंबों का
हम अस्तित्व मानते
जिससे ये प्रतिबिंब, न उसको
मूलाधार जानते

जिसे त्वचा में स्वाद मिला वह
ऊपर नही बढ़ेगा
फल, फूलों के लिए विटप पर
ऊँचा नही चढ़ेगा

वह कह देता दुनियाँ भर का
सब आनन्द यहाँ है
और सोचता जग में ऐसा
मधु मकरंद कहाँ है ?

पर, ज्ञानी ऊपर चढ़ जाते
फल मीठे खाते हैं
पर्ण, डालियाँ, त्वचा जरा भी
नहीं लुभा पाते हैं

मीराँ

मैं गिरधर को इस दुनियाँ से
ऊँचा माना करती
उनसे ऊँचा नही किसी को
भी मैं जाना करती

मीराँ सोम निहार रही थी
प्रिय मीराँ के मुख को
वे विवेक से आकर्पित थे
मान गये थे रुख को

बोले वे गद्गद्, मुस्का कर
आओ, हम खिल जायें
तुम विरक्ति हो, और भोग मैं
एक साथ मिल जायें

मीराँ पति के प्रति गदगद थी
वे मीराँ से हर्पित
एक दूसरे का तन, प्रतिभा
करते थे आकर्पित

चाँद गगन में चढ़ आया था
सुन्दर था, भाता था
सौम्य दृश्य था, दोनों का ही
हृदय पिघल जाता था

★

सप्तम सर्ग

★

निज रंग-महल की छत ऊपर
सब कुछ निहार मीराँ चंचल
जब बैठ गई रुक कर, थक कर
कुछ सोच रहा था अंतस्तल

वह स्थल था सुन्दर जिस पर से
सब ही दिखलाई पड़ता था
चारों कोनों का दृश्य सुखद
नयनों में स्पष्ट उमड़ता था

प्रिय भी समीप आसीन हुए
बोले, यह स्थान मनोहर है
वह देख रही थी यत्र तत्र
बोली, हाँ सचमुच सुन्दर है

ऐसा होता है ज्ञात मुझे
जीवन में पढ़ना, चढ़ना है
या चढ़ना-पड़ना ही जीवन
थक थक कर आगे बढ़ना है

बोले प्रिय, ऐसी बात नहीं
जीवन चढ़ना ही चढ़ना है
पड़ना जीवन का ध्येय नहीं
आगे आगे ही बढ़ना है

जो नीचा होगा नहीं, कहो,
कैसे ऊपर चढ़ सकता है?
जो पीछे होगा वह ही तो
आगे आगे बढ़ सकता है

छोड़ो जी, ऐसे झगड़े को
है व्यर्थ उलझना बातों में
देखो तो, दूर छटा कैसी
पर्वत के मंजु प्रपातों में?

कल वहाँ चले जायेंगे हम
आखेट करेंगे जी भर कर
हाला के प्याले ढालेंगे
रस से भींगा गूँजेगा स्वर

शशकों, हरिणों का मांस मधुर
छाया में बैठ सेकेंगे
झरनों का पायेंगे पानी
फिर दृश्य अनोखे देखेंगे

चलने को मन हो तो बोलो
तुम साथ-साथ चल सकती हो
अन्यथा यहाँ बैठी-बैठी
एकाकी कर मल सकती हो

मैं नहीं समझ पाई क्यों यों
जीवों की हत्या करते हो?
क्यों अत्याचारों, पापों से
जीवन की झोली भरते हो?

जीवों को सता, मार कर क्या
कोई कुछ सुख पा सकता है ?
हड्डियों, मांस, शोणित में क्या
कुछ स्वाद कभी आ सकता है ?

जैसे हम, वैसे वे भी हैं
अभिलाषा, आशा रखते हैं
सुख-दुख, आह्लाद-हर्ष सब ही
का स्वाद निरंतर चखते हैं

सब उस असीम की रचना है
सब उसके ही हैं अंश भिन्न
उनकी हत्या, अपनी हत्या
इससे होते विभु सदा खिन्न

तुम लोग मनोरंजन करते
उन पर पीड़ा आ जाती है
कैसी दुनियाँ है, जीवों का
जीवन हर कर मुस्काती है ?

कोई तुम लोगों को मारे
तो कितना जी दुख पाता है ?
चींटी से लेकर हाथी तक
ऐसा ही सब का नाता है

वे जीव कहाँ रहते होंगे
जिनके मुखिया 'मारे जाते ?
वे कहाँ बिताते होंगे दिन ?
किससे कहते दुख की बातें ?

जीवन की सुन्दर बेला में
क्या यह ही करने आये हैं ?
भौतिकता के चक्कर में पड़
क्यों पता नहीं भरमाये हैं ?

क्या यह ही आगे बढ़ना है ?
क्या ऐसा ही होता जीवन ?
क्या यह ही ध्येय रहा, करना
शोणित-मदिरा से पीवर तन ?

ऐसे तन की, ऐसे मन की
कितनी कुत्सित अभिलाषाएँ ?
ऐसे नर की होती होंगी
कैसी गर्हिततम आशाएँ ?

यह दुनियाँ है, इसमें कोई
कुछ बोल नहीं जो सकते हैं
मारे जाते वे, स्वतंत्रता
का मोल नहीं चख सकते हैं

दूसरे जनों की आशाएँ
कर नष्ट रक्त जो पीते हैं
वे ही जगती के अधिकारी
सुखपूर्वक वे ही जीते हैं ?

यह सुरा-पान, जो कालकूट
जीवन का रस हर लेता है
निर्मल विवेक को, श्रद्धा को
तममय, कुरूप कर देता है

मदिरा के मादक प्याले में
दानवता नर्तन करती है
जीवन के सत्शिव, सुन्दर में
नंगा परिवर्तन भरती है

पर खेद, खेद, मानव उसको
मधु, मधु कह कर चिल्लाता है
तम के अंतर् में धँस कर भी
वह उसके ही गुण गाता है

तुम भोली हो, घर में रहती
इन बातों को क्या जान सको ?
मृगया के सुख, चपकों के रुख
कैसे, क्यों, क्या पहिचान सको ?

हम ही क्या हत्या करते हैं ?
जग ही सारा तल्लीन शुभे !
अपना तड़ाग, उसमें देखो
क्या करती रहती मीन शुभे ?

घर की बिल्ली को ही देखो
चूहों पर झपटा करती है
पेड़ों पर लुक-छिपकर, चढ़ कर
विहगों का जीवन हरती है

उस बिल्ली पर भी तो निशिदिन
कुत्ते ये ताक लगाते हैं
श्वानों के कितने ही घातक
घातक भी प्राण गँवाते हैं

तुम आँख खोल कर देखो तो
यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है
चुपचाप तटस्थ बने रहना
जीवन की दुर्बल जड़ता है

जगती में यदि जीना है तो
यों रहो नहीं, संघर्ष करो !
तट पर न रुको, झट त्वरित उठो !
चंचल लहरों का स्पर्श करो !

यह जीवन है संघर्ष-भरा
जो जितना घर्षण करते हैं
जीवन - उपवन में अमृत का
उतना ही वर्षण करते हैं

'प्राणी-हत्या' बोली मीराँ
संघर्षों की परिभाषा है ?
स्वार्थान्ध जगत् के अंतर् की
यह कैसी कुत्सित भाषा है ?

कह तो देते अभिमान लिये
हम मानव हैं सबसे ऊँचे
कैसा ईश्वर क्या पाप पुण्य ?
हम ही सब बातों में पहुँचे

पर, अपने पाप छिपाने को
कुत्तों की उपमा देते हैं
ऊपर विद्वत्ता की धारा
भीतर शोणित पी लेते हैं

यह सुरा-मांस का सम्मिश्रण
व्यभिचार बढ़ाया करता है
स्त्री का सतीत्व कुछ टुकड़ों पर
जिससे लुट जाया करता है

ये दासी, कुलटा, वेश्याएँ
नंगा विकास व्यभिचारों का
ये सुरा-पान की देन गर्ह्य
कुत्सित फल पापाचारों का

व्यभिचार, गात्र विष-कन्या का
ऊपर से मन हर लेता है
मधुमय जीवन के कण-कण में
पर कालकूट भर देता है

पापों को प्रोत्साहित करना
आत्मा की हत्या करना है
आत्मा-विहीन पशु, है दानव
जीवित रहते भी मरना है

यह पाप एक, जिसको ढकने
सौ झूठ बोलनी पड़ती है
जलते चूल्हे पर काष्ठ-उखा
पर एक बार ही चढ़ती है

सुनती हूँ, मानव यह जीवन
कठिनाई से ही पाता है
चौरासी लाख योनियों में
वह घूम-घूम थक जाता है

पापों का, पुण्यों का निर्णय
भी स्वर्ग-धाम में होता है
जो जगता, वह कुछ करता है
जो सोता है, वह रोता है

पति बोले, रहने दो प्रवचन!
तुम काम करो अपना, जाओ!
इन उपदेशों को रहने दो!
गृहिणी हो, घर पर मँडराओ!

नारी तो नर की दासी है
नर के टुकड़ों पर पलती है
नर के इंगित पर जीवन भर
कठपुतली की ज्यों चलती है

चक्की, चूल्हा, चौका, बर्तन
स्त्री के जीवन की माया है
संतान-जनन का यंत्र, पुरुष
की अनुगामी वह छाया है

मीराँ नागिन सी झुँझलाई
नारी का जागा स्वाभिमान
थे नयन अरुण, खो गई कुहा
हो गया स्वर्ण हो ज्यों विहान

मीराँ

क्या नारी नर की दासी है ?
क्या कहा, पुरुष पर पलती है
क्या कठपुतली है, छाया है ?
पीछे-पीछे ही चलती है ?

नारी जिसके वैभव बल पर
सब काम जगत् के चलते हैं
पर अधःपतन उसका कितना
उसको नर कामी छलते हैं !

बचपन की, माता की बातें
सब युगपत् गूँजी कानों में
थी सोच रही, यह आत्म-हनन
क्या छोड़ चलूँ सन्तानों में ?

अंतर् कहता था उठो, उठो,
तुम नारी हो, जग-माता हो
जागो, जागो, चेतो, चेतो,
तुम ही तो जग की त्राता हो !

तुम जिधर धरोगी चरण, उधर
संसार घूम यह जायेगा
भ्रू-भंगों का ईषत् इंगित
भू-कंप ढूँढ़ ले आयेगा

नारी अपने को पहिचानो,
तुम ही तो भाग्य-विधात्री हो !
तुम ही जीवन - आधार - मूल !
तुम ही तो जग-निर्मात्री हो !

जग नष्ट - भ्रष्ट हो जाता तुम
होती न अगर, तुम श्रद्धा हो !
विश्वास, कल्पना, भावुकता
तुम ही तो, तुम क्यों बद्धा हो ?

वह उठी और चल पड़ी मौन
उर में विश्वास छलकता था
नारी का क्या सच्चा स्वरूप
आकृति से स्पष्ट झलकता था

प्रिय ने उसका कर पकड़ लिया
तुम कहाँ जा रही हो, ठहरो,
मैं नहीं ठहरती, क्या मतलब ?
जो जी में आये वही करो !

मैं नारी, मेरा तिरस्कार
होता कष्ट, महा भयंकर है
मैं, ऋद्धि सिद्धि भी, शान्ति, क्षमा
मेरा स्वरूप प्रलयंकर है

मैं जागूँ तो जग जाग पड़े
मेरे सोने पर सोते हैं
मेरी मधु मुस्कानों से ही
ये लोक प्रफुल्लित होते हैं

वह कालकूट वाला शंकर
मेरे अभाव में रोता है
वह विष्णु, स्वयं जगदीश सदा
मेरी गोदी में सोता है

मैं क्रोधित होकर नाचूँ तो
जगती में हाहाकार मचे
मैं क्रान्ति, नाश की ज्वाला हूँ
जल उठने पर कुछ नहीं बचे

जगती के सारे रक्तपात
मेरे इंगित पर होते हैं
मेरी किंचित् नीरसता से
रावण दुर्योधन रोते हैं

मीराँ

मेरी आँखें खुल गईं आज
निद्रा में बेसुध सोती थी
अपने ही सुख-दुख, हर्ष-कष्ट
से अविरल हँसती, रोती थी

मेरे समान ही कोटि कोटि
जग-निर्मात्री पद-धूल बनीं
उनके चिर बन्धन काटूँगी
इच्छाएँ होमूँगी अपनी

मैं एक बढ़ूँगी तो आगे
पीछे सब ही बढ जायेंगी
संकीर्ण परिधियों से उठ कर
हेमाचल पर चढ जायेंगी

तब संसृति का यह नरक-कुंड
मधु, अमृत से भर जायेगा
कठपुतली, दासी, छाया का
कुत्सित सपना मर जायेगा

प्रिय बार बार यों कहते थे
छोड़ो सब, सुन्दर बात करो !
पागल तो नही हुई, भूलो !
मत यों तुम क्रोधित गात करो !

देखो, यह भिखमंगा शंकर
तेरे अभाव में रोता है
आओ, लक्ष्मी, इंदिरा हँसो !
यह विष्णु अंक में सोता है

कह कर यों प्रिय ने अपना तन
उसके घुटनों पर डाल दिया
वह हँसी जरा, क्रोधित सी थी
उनका तन त्वरित सँभाल लिया

प्रिय कहते थे, अनुनय-स्वर में
तुम बातों में चिढ़ जाती हो
कुछ कहीं व्यंग्य में छेड़ दिया
तो गुस्से में बतलाती हो

साजन-सजनी की भी होती
क्या कोई कहो लड़ाई है ?
मेढ़तनी का सारांश मूर्ख
सचमुच कौशिक की ताई है

पागल तो कितने ही देखे
पर तुम उन सबकी माता हो
तुम जग-जननी हो ज्ञाता हो
तुम महा मूर्ख-निर्माता हो

देखो जी छेड़ रहे हो फिर
पहले तुम बात बनाते हो
फिर भाँति-भाँति का विनय लिये
भीगी बिल्ली बन जाते हो

ऐसे दो-रंगे पुरुषों की
बातों पर कोई ध्यान धरे
वह पागल है, खर का ताऊ
ऐसी 'गिरगिट-संतान', हरे ?

जल-पान अभी मँगवाता हूँ
कुछ-कुछ तो भूख लगी होगी
इतना जब क्रोध किया है तो
ज्वाला अत्यन्त जगी होगी

फिर नाच तुम्हारा देखूँगा
तुम तो विनाश की ज्वाला हो ?
तुम ही तो पत्थर के आगे
सटकाया करती माला हो ?

दो-दो पुरुषों की नारी तो
चटपटी नक-कटी होती है
मैं वर, गिरधर भी, दो असियाँ
क्या एक म्यान में सोती हैं ?

संघर्ष बिना जीवन दूभर
अपना संघर्षण ही देखो
नीरस उन्मनता दूर हुई
फिर नव आकर्षण ही देखो !

बोली संघर्ष आपका तो
तन तक ही सीमा रखता है
सारा जग ही हत्यारा है
मन यह ही सदा निरखता है

संघर्ष नहीं तन तक सीमित
तन का, मन का संघर्ष मधुर
मन का विवेक, तन का विकास
मिल जायें, पुनः बजें नूपुर

संघर्ष, सोम का उद्गाता
जीवन में ज्योति जगाता है
अन्याय, कालिमा, दुराचार
जीवन के दूर भगाता है

संघर्ष तिमिर-तोमों से हो
जिससे जग होवे भास्वान्
विष, पाप, असत्य, अधर्म, ग्लानि
जिसमें होवें लय नाशमान्

प्रिय बोले, जो वह दूर दूर
आकार दिखाई देता है
वह बड़ा लड़ाकू है, दुर्गम
वह सबसे बड़ा विजेता है

उसके नीचे अगणित योद्धा
अभिलाष दबाये सोते हैं
आक्रामक बस निहार कर ही
पीछे मुड़ते हैं, रोते हैं

कहते हैं, उसके द्वारों को
हाथी भी जरा न तोड़ सकें
तोपों के बड़े बड़े गोले
उसको कुछ भी न मरोड़ सकें

मैं उस पर कभी कभी बैठा
अनुपम सुख अनुभव करता हूँ
वह महा प्रतिष्ठा का आलय
अभिमान लिये पग धरता हूँ

मैं सोचा करता हूँ, ऐसा
कब सुन्दर अवसर आयेगा ?
जब यह सिंहों का शावक भी
जीवन—सर्वस्व लगायेगा ?

यह मातृ-भूमि मेरी मुझको
जग भर से प्यारी लगती है
इसके संस्मरण मात्र से ही
जीवन में आशा जगती है

मीराँ प्रिय-वदन निहार रही
वक्षस्थल फूला जाता था
जो बार बार ही जननी के
संस्मरण ज्वलन्त जगाता था

बोली लड़ने जायेंगे तब
मैं भी माला पहनाऊँगी
तलवार हाथ में दे दूँगी
मस्तक पर तिलक लगाऊँगी

जब युद्ध जीत आयेंगे तो
आरती उतारूँ, गाऊँगी
अन्यथा अंक में सिर रख कर
मैं भी कर्तव्य निभाऊँगी

मा, जननी, ! तू कितनी उज्ज्वल ?
तेरा मुख कितना शीतल है ?
तेरी महिमाओं के समक्ष
जग भर का कंचन पीतल है

पर, स्वभावतः लड़ना-भिड़ना
मुझको कुछ भी न सुहाता है
सब रहें प्रेम से हिल मिल कर
मुझको तो यही ही भाता है

यह जीत रक्त से लथपथ है
इसमें तो हाहाकार भरा
जय-श्री के अंचल के नीचे
शोणित-पंकिल, सुनसान धरा

दुर्बलता सबसे बड़ा पाप
दुर्बल होना अन्याय यहाँ
दुर्बल मनुष्य के जीने का
कोई भी नहीं उपाय यहाँ

जो शक्तिमान्, वे दुर्बल का
सर्वस्व चुराया करते हैं
दुर्बल की नारी को सब ही
भाभी बतलाया करते हैं

धर्मों, कर्मों के अंतर् में
मानव का स्वार्थ समाया है
ऊपर, नीचे, परितः, भूपर
नभ, जल, दिगंत तक छाया है

ये धर्म-युद्ध नारी, वैभव,
वसुधा के कारण होते हैं
हँसने वाले हँसते रहते
रोने वाले ही रोते हैं

वश चले जगत् पर यदि मेरा
तो मैं न किसी को लड़ने दूँ
जीवन-पथ पर सब बढ़ें, चढ़ें
आपस में नहीं झगड़ने दूँ

वह देख रही थी झरने को
जो दूर दूध सा बहता था
जग-तृषा बुझाओ, सजल करो
बढ़ते जाओ, जो कहता था

उसके तन में, उसके मन में
निर्मलता मंजु झलकती थी
तापित पाषाणों पर भी तो
आत्मा अभिराम छलकती थी

'झीलों की रानी' खोई सी
जग-दुख से मन भर आया था
प्रिय के समीप सट कर बैठी
निर्झर का जीवन भाया था

★

अष्टम सर्ग

★

जिस रज पर लोटा हो शरीर
उस धरती की लघु स्मृतियाँ भी मन को करती रहतीं अधीर
उसके दर्शन के लिए मनुज के आकुल रहते सतत प्राण
आशाएँ तृप्त बना देती उसकी चिर परिचित धूल-घ्राण
मलयानिल के झौंके उसके आगे जाते हैं सभी हार
जननी सा शीतल वक्ष, शान्ति, संतोष, राग का महा द्वार
यह स्वतंत्रता का पुण्य-तीर

उस भू का मुक्तोच्छ्वास व्योम
विस्तृत, दीपित, नीरव, अनंत, अंचल में गतिमय अरुण सोम
विहगावलियों के मधुर कंठ भरते रहते अभिराम तान
सौदामिनियों का नव नर्तन, जिसमें जलदों का मुग्ध गान
सुर-धनु की ललित कलाओं का जिसमें अंकित साकार रूप
जगती की मंजुलताओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्मतम तरल स्तूप
पुलकित कर देता रोम रोम

अष्टम सर्ग

तरु, कोटर, सर, घर, द्वार, डाल
जिनकी प्रति धड़कन में लिपटा अहि-कुंडलियों सा स्नेह-जाल
ऊँचे, नीचे, टेढ़े, मेढ़े, सीधे, दुर्गम पथ, जो विचित्र
आमंत्रण देते मौन, लिये आकर्षण जैसे जन्म-मित्र
सपनों में करते खेल सदा जो भाँति-भाँति के लिये वेश
चिर निद्रा के पीछे भी जिनका रहता अंकित स्मरण शेष
जीवन में भरते सदा ताल

यों सोच रही आसीन मौन
उर के तारों को छूता था जाने अविरल अज्ञात कौन ?
श्वसुरालय से पीहर लौटी वह मीरा स्मृतियाँ लिए साथ
तन मन की अभिनव रचना में जिनका पूरा ही रहा हाथ
दृग झाँक रहे थे दूर, मुक्त थे वातायन के लघु कपाट
बचपन का परिचित रज-प्रांगण, पर्वत-प्रदेश, संस्रोत-पाट
ज्यों कहते थे सानन्द हो न ?

परितः उठता था यही गान
पर, वह खोई खोई सी थी, सुनते थे नीरस बने कान
दृग देख रहे थे दृश्य किन्तु अन्तर् में प्रिय की विदा-बात
प्रत्यावर्तन हो आशु, तुम्हारे बिना हृदय है शुष्क पात
आकुलता, नीरवता, विषाद प्रिय के आते थे घने याद
पीहर आने की उत्सुकता में घुला गहन जिनसे विषाद
कल ही आई पर रही म्लान

कितने ही दिन थे गये बीत
जिनमें जग भर के दुख-सुख की कितनी ही बदली दिशा, रीत
जीवन का क्रम श्वसुरालय के चिंतन-पथ पर चलते अबाध
प्रिय-चिन्तन में ही भूला था, घुल मिलने की ही रही साध
जब लौटी तो वह क्रम टूटा, मिलने दौड़ा फिर भूत काल
परिवर्तन ही परिवर्तन, जिससे घूम रहा था शून्य भाल
फिर जाग पड़ा था मधु अतीत

पीपल का वह प्राचीन वृक्ष
दोपहरी का जो शयनकक्ष, सब तुच्छ रहे जिसके समक्ष
वे हरे भरे, वे शुष्क पर्ण, जिनका संचय था नित्य कर्म
नौका बनती, ऊपर चढ़ने का जान सकेगा कौन मर्म ?
फुनगी फैला कहता था ज्यों आओ, मेरे सुकुमार फूल !
जीवन परिवर्तित हुआ अधिक, क्या मुझको भी तुम गई भूल ?
था खड़ा, विहग ज्यों छिन्न-पक्ष

सूखे बिखरे थे सभी पात
थे काँप रहे थर थर थर, बीता था नवयुग का प्रभात
वे मृदु पल्लव, जिनसे प्रतिक्षण थी आँख-मिचौनी, किये खेल
जाने कब, कौन, कहाँ विलीन होगये, ले गया कौन पेल ?
उनका सूखा, सूना शरीर कहता था वे भी लिये खेद
भू में खोये मिट्टी बन कर अस्तित्व न कुछ भी रहा भेद
कुछ भी न यहाँ अब रहा बात

उस पीपल के वासी विहंग
सूने-सूने मे उड़ते थे, सब चला गया था रास, रंग
अब नहीं पास उड़ आते थे, पर तब करते थे उछल कूद
गायन गाते हँसते आते. फुनगी पर सोते नयन मूँद
जब करते बात पकड़ने की तो जाते फर फर दूर भाग
दानों पर फिर आ डटते थे, चिड़ियाँ, कपोत, शुक-झुंड, काग
तब कितनी थी सुन्दर उमंग ?

सुनसान पड़ा था मित्र कूप
ऐसा लगता था जैसे इसका बदल गया है सभी रूप
झुक-झुक कर, झाँक-झाँक अविरल जिससे करते थे मुक्त बात
फेंका करते कंकड़, फिर भी रहता था मीठा, स्नेहस्नात
जिसके जल-कुंडों का पानी हर देता था सब देह-ताप
तिरना, भागना चक्कर-क्रीड़ा. जिनके सुख का कुछ नहीं माप
सहता एकाकी शरद्, धूप

पनघट-शृंगों पर मौन मोर
बैठा-बैठा टक टका रहा था भींगे से थे नयन कोर
अरुणोदय होते ही चुगने आ जाता था अत्यन्त पास
मोरनियाँ भी आ जाती थीं, जम जाते थे फिर नृत्य, रास
सुन्दर पाँखों के चुगने में कितना होता उत्साह शान्त
पाँखों को गिन गिन कर रखना, पीछे-पीछे फिरना सुखान्त
वे दिन थे सचमुच और और

सोते थे जिस पर पग पसार
वह शय्या कोने में दुबकी जैसे कोई गहरा विचार
सिर हाथ पैर ढीले कर कर लेते थे जब-जब आँख मींच
नन्हें, मृदु, कान्त बिछौने वे अमृत से देते हृदय सींच
थपकी दे दे बहला देता ऊषा का प्रिय शीतल समीर
दिनकर उगता, दिन चढ़ जाता, फिर भी वह कब होती अधीर ?
अनुपम था उसका वह दुलार

भूले भूले हो गये पात्र
जिनमें करते इच्छानुसार थे खान-पान सब अहोरात्र
भोजन करने की लघु थाली चुपचाप पड़ी नीरस उदास
जीवनमय, सजल कहाँ, निर्मल पानी पीने का भी गिलास ?
जल की लघु कुंडी कहती थी, आओ, वैसे ही करो स्नान
कितने ही हाथों से फूटे टूटे आते स्मृति में अजान
जीवन-सहचर जो एकमात्र

क्रीड़ा-आशय वह मुख्य बाग
चुपके, छुपके, अवसर निहार जाते थे जिसमें भाग-भाग
गिलहरियों की ज्यों चढ़ जाते दुर्गम पेड़ों पर भी समान
कोई रहता ऊपर, नीचे मृदु मधुर फलों का किये ध्यान
फूलों के गुच्छे जहाँ कहीं देखे तो लेते त्वरित तोड़
मृदु हरी दूब पर लड़ने की आपस में करते सतत होड़
भरता अब जीवन में विराग

पावस के सुन्दर, रुचिर मेघ
रीते-रीते से लगते हैं, बीता ज्यों उर का मधुर बेग
आओ, आओ, बरसो, बरसो, आवाहन करते निर्निमेष
हर्षित, नर्तित होते, हरती प्रिय इन्द्रवधूटी सभी क्लेश
रिमझिम रिमझिम बूँदें पड़तीं, करते थे नगे बने स्नान
मिट्टी के घर बुनते सुन्दर, प्रासादों का था तुच्छ मान
झूलों पर बढ़ते तीव्र पेग

जाड़े में मिलते मित्र जाग
सम्मिलित स्वरों में आतप का आमंत्रण करते लिये राग
मन हरते थे बकरी, भेड़ें, गायें, भैसें, खर, अश्व, श्वान
परिचित से मित्र बने रहते, व्यवहार प्राकृतिक था समान
ब्याही कुत्ती के लिये माँग लाते घर से गुड़, चून, तेल
लकड़ी चुनते, हलुवा घुटता, कुतिया खाती, सब बाल्य-खेल
तब कितना था अनुराग, त्याग ?

सब अपने-अपने लगे काम
वे पशु-पक्षी, वे मित्र-वृन्द, जो साथ रहे नित सुबह-शाम
कोई भूला, कोई फूला, कोई परिस्थिति में पराधीन
इस पार रहा, उस पार गया, कोई निर्धन, कोई अदीन
जो स्रोत एक उद्गम स्थल पर बहता था लघु-लघु मधुर शान्त
वह विविध विभागों में खोया, चंचल लहरें अविराम भ्रान्त
बदले सुख-दुख, हिम, शीत, घाम

वह सब, सपना रह गया शेष
वह अलहड़ता, वह चंचलता भरती जीवन में कठिन क्लेश
लघु-लघु से उस पथ के यात्री सब बिछुड़ गये खिल रही धूप
बदली वह गति, तन-मन बदला, बदले जीवन के सभी रूप
बिछुड़ी लहरों की तरह मौन हो जाता अनजाने मिलाप
पर मिलने में क्या सुख होता ? ज्यादा मिलता है आज ताप
मिलना भी देता आज ठेस

अष्टम सर्ग

किस शून्य गुहा का चीर द्वार
अरुणोदय में ही लीन हुई वह मेरी जननी मा उदार ?
अब किसकी गोदी में सोऊँ, किससे अब पाऊँ वह दुलार ?
केशों को सहला, वदन चूम जीवन का हर दे कौन भार ?
किसके अंचल का मंजु छोर मुझको कर देगा अब सशक्त ?
किसकी मृदु वाणी में अमृत झर-झरर झरेगा दिवं नक्त ?
खोया जीवन ने मातृ-प्यार

टेढ़ा मेढ़ा यह भुग्न, भ्रान्त
मानव-जीवन, जो नहीं एक सीधी गति से जाता समान्त
जगती के विविध कलापों के लगते इस पर आघात-वात
अधिकांश व्यक्तियों का जिनसे रुक जाना जीवन का प्रपात
विचलित होकर वे इधर उधर हो जाते जीवन से निराश
जगती के सुख आनंदों को फिर लूट नहीं सकते हताश
मिलती न पूर्णता वह सुखान्त

इच्छाओं का जैसा वितान
जिसके उर में जितना होता, होता वैसा जीवन-विधान
इच्छाओं से अन्यत्र पृथक् जीवन की सत्ता नहीं व्याप्त
इच्छाओं में ले जन्म मनुज इच्छा में ही होता समाप्त
इच्छा ही है मनुष्य, जिसके मन का जैसा स्पन्दन-स्वभाव
वैसा ही जीवन बनता है, वैसे ही बनते हाव भाव
उर का संवेदन ही प्रधान

जीवन के परितः दुर्निवार
अविराम अगोचर रूप लिये फैले रहते हैं संस्कार
जिसका प्रभाव कल्पना-शील मन पर पड़ता समयानुकूल
अस्तित्व संस्कारों का यह अणु-अणु में रहता लिये मूल
उन भावों का संतुलन-यत्न करता रहता है अंतराल
भावों की क्रिया तोड़ देती बन्धन का गत्यवरोध - जाल
कृतकृत्य मनुज गर्वित अपार

जीवन के क्षण प्रत्येक आप्त
पूर्णता प्राप्त करने में ही होते रहते प्रतिक्षण समाप्त
मानव-जीवन दुर्बलता के अंगारों का अस्पष्ट धूम
प्रत्येक अग्नि के कण विनाश की शान्त भस्म को रहे चूम
वे सुलग-सुलग कर कब कितना विस्फोट करेंगे, नहीं ज्ञात
क्षाराधृत रहें याकि सुलगें, यह भी सब है अज्ञात बात
जीवन रहस्य है तिमिर-व्याप्त

जीवन के क्षण संक्रान्तिकाल
संक्रान्ति-काल का प्रति स्पन्दन रखता अपनी सत्ता विशाल
जगती में जो नाना, विचित्र घटती हैं घटनाएँ अनंत
जिज्ञासा पर भी नहीं कभी मिलता उनका उद्देश्य-अंत
क्षण कभी सतत चिन्ता करते, हँस देते फिर वह प्रश्न भूल
इस ही उलझन में द्विविधा में जीवन का आता निकट कूल
उलझा ही रहता जगत्-जाल

सुख दुख ही ठहरे राग द्वेष
दोनों जीवन के मुख्य तत्त्व अंतिम क्षण तक ये रहें शेष
किरणों का मंडल बने सूर्य, रश्मियाँ सूर्य से नहीं भिन्न
दिनकर किरणों से नहीं पृथक्, एक ही वस्तु दोनों अभिन्न
आत्मा-विवृद्धि, विस्तार, अधिकता के सुख हैं अभिराम भाव
उसका संकोच, अल्पता दुख, ह्रासों का छलनामय दुराव
दोनों देते नित हर्ष ठेस

मानव सुख-दुख का घना स्पर्श
जितना जीवन में है विषाद, उतना ही है आनंद, हर्ष
वैभव, विलास के मधुर भाव जीवन में होते जो न तृप्त
मानव को वे घेरे रहते वह भी रहता अविराम लिप्त
इस पार रुदन, क्रंदन सिवाय कुछ भी होता है नहीं प्राप्त
फिर भी मरीचिका की ज्यों वह उस पथ पर ही तल्लीन व्याप्त
सम्मिश्रित अपकर्षोत्कर्ष

जीवन वट सा विस्तृत अनंत
सुख की दुख की दो शाखाएँ जिनसे आच्छादित दिग्-दिगंत
ये सघन पर्ण, अभिलाषाएँ जो हरी भरी कोमल, ललाम
विहगों के दल हैं स्वप्न-जाल, उड़ते नभ में जो तज विराम
नीचे छाया में अन्धकार, ऊपर है प्राची का प्रकाश
शाखामृग मानस की उमंग, कर उठती है जो अट्टहास
जो मूल, छोर, उनका न अंत

जीवन में सबसे बड़ी भूल
ठोकर लगती, करती सचेत, फिर भी रहता है दृष्टि स्थूल
ममता, माया, सम्मोह, स्वार्थ के आवरणों में ढका, लीन
कुछ जान नहीं पाता मानव, यह सत्य चिरंतन समीचीन
अपनी भूलों के साथ युद्ध करना ही जीवन, सत्य तथ्य
पर वह अपने क्रम पर चलता, करता भूलों से नहीं पथ्य
थक जाता है वह भूल - भूल

प्रतिध्वनित नहीं होता अतीत
जिस जीवन में, उस जीवन का होता अविराम भविष्य भीत
उसके भविष्य की आकृतियाँ होतीं तम-अंतर् में निमग्न
सुन्दर पथ की स्वर्णिम रेखा नीहार-तिरोहित, अस्त, भग्न
प्रतिपल संजीवित रखता है इस वर्तमान को वह अतीत
दोनों का यह सम्बन्ध-छेद उस दिन संभव जब प्रलयगीत
यह परंपरा मानव-अधीत

अपने को मानव पूर्ण जान
अपरों को पामर, हीन समझ कर उठता है दर्पाभिमान
अविराम हँसाया करता है उसको दुर्मति का अंधकार
वह सोच-सोच मुस्काता है मेरी सीमा का नहीं पार
अपने को हीन समझता है तब रो उठता है वह अजान
सामर्थ्य-हीनता और शक्ति द्वन्द्वों में जीवन का विधान
दोनों की मात्राएँ समान

शाश्वत है निर्मल सत्य तत्त्व
वह परिवर्तन से दूर एकरस, अजर, नित्य उसका समत्व
अरुणोदय होता नहीं ज्ञान जीवन भर भी प्राचीन, जीर्ण
चन्द्रिका निरंतर ही समान, लगती न कभी म्रियमाण, शीर्ण
इसलिए, क्योंकि वह नहीं सृष्टि मानव की, मानव है अपूर्ण
सर्जन-आकांक्षा रखता यों उससे निर्मित सब नहीं पूर्ण
प्रतिक्षण परिवर्तित मनुज-स्वत्व

स्वर्णिम आदर्शों का वितान
जिसमें लिपटी है मनुज-जाति, है महा आवरण का पिधान
दुर्गुणों और दुर्बलताओं का मानव गहरा लिये भार
अपने को समझ बैठता है देवता स्वयं ऊँचा उदार
जगती को रँगी हुई आकृति दिखलाता वह कृत्रिम स्वरूप
उर-तम में छिपा हुआ रहता उसका सच्चा, वास्तविक रूप
वह सत्य सदा जीवित महान्

मिट्टी का भंगुर, असत् पात्र
उसमें भी रक्खी हुई सुधा का मूल्य न कम, शम् एकमात्र
प्रत्येक मनुज के अन्तर् में अंकुर सशक्ति के विद्यमान
उनको विकसित कर प्रकाश में लाना, सुन्दर वास्तविक ज्ञान
ज्यों-ज्यों होता जाता विकास, जीवन का स्तर भी वर्द्धमान
ये शक्ति-ग्रन्थियाँ खुलने पर मानव हो जाता है महान
अमृत का घट यह लिये गात्र

आवश्यक है यह परम धर्म
मानव के लिये अपेक्षित है, इससे सुन्दर कुछ नहीं कर्म
अपने जीवन में वह समाज, जीवन का चिन्तन करे गहन
उनकी साधारण गूढ़ मनोवृत्तियाँ हृदय में करे वहन
उन दोनों को सम्मुख रख कर दोनों को देखे दृष्टि डाल
दोनों में ही घुल-मिल जाये, है यही सफलता मुक्ति-काल
दे जाये जग को सूक्ष्म मर्म

भावों की सत्ता में विलीन
व्यक्तित्वों की विशेषताएँ हो जातीं, ज्यों जल-बीच मीन
सब उच्च-क्षुद्र निज सुख-दुख से हँसते, रोते समयानुसार
उचता, नाचता, ये सब ही केवल भावों के ही विचार
ऊँचे भावों से प्रेरित हो जो करते रहते कर्म परम
वे अध्यवसायी महामनुज कर देते सीमा पार चरम
जीवन भी क्या भावना-हीन ?

जीवन का पथ निर्माण-कार्य
क्षण-प्रतिक्षण सर्जन हो सुन्दर, जगती की पीड़ा, कष्ट हार्य
अपनी जीवित वेला में ही अपना सुख धन वैभव बिसार
जग को कुछ देना, फिर अनन्त शून्य में शान्ति से पग पसार
सो जाना ही सच्चा जीवन, जिसमें न प्रदर्शन मृषोन्माद
मृत किये सत्य की गठरी को ले जाने में होता विषाद
बनता जीवन बोझिल, न तार्य

पृथ्वी पर दोनों नरक, स्वर्ग
बन्धन न रहे तो क्या रक्खेगा मूल्य यहाँ अपवर्ग-वर्ग ?
दूसरा एक का पूरक है, दोनों से दोनों का महत्त्व
रजनी के गहरे अंधकार दिनकर की आभा में समस्त्व
इन नरक स्वर्ग की छाया में जीवन का तनता है वितान
जिसमें सुख दुख, आल्हाद व्यथा का मुखरित होता नित्य गान
दोनों जीवन के मुख्य सर्ग

नभ में कितने ही ग्रह अपार
प्रतिपल जलते हैं नित्य, पहुँच पाता कोई ही ज्योति-द्वार
ऐसा कोई भी नहीं भाग जिसमें तारों का हो न जाल
जलते रहते, चलते रहते, छोड़ता किसी को नहीं काल
पर कितने ही ध्रुव ज्योति लिये अंतिम क्षण तक भरते प्रकाश
टूटते-टूटते भी तम हर देते, उज्ज्वल होता विभाश
सबको होता उनका विचार

मानव करुणा से द्रवित, प्रीत
होता है जितनी बार, जन्म का बहता उतनी बार स्रोत
सम्वेदनशील हुआ करता इतना, जब जगती का समस्त
संगीत मधुर प्रतिध्वनि बन कर गुंजित होता प्रतिपल प्रशस्त
उस क्षण जीवन-उन्मुक्त कहा जा सकता है वह निर्विवाद
मुक्तावस्था के बिना हर्ष-दुख, हानि-लाभ, माया-विषाद
करुणा जीवन-आधार-पोत

जीवन वास्तविक न मृत्यु भीत
वह सतत मृत्यु की छाया से क्रीड़ा करता कल्पनातीत
उसका रहता है लक्ष्य, मृत्यु को करना है प्रतिपल परास्त
अपनी वास्तविक मृत्यु से ही जीतता मृत्यु को वह कृतास्त
कोल्हू के अनड्वान् की ज्यों बँधना जीवन का नहीं काम
सुन्दर जीवन के इंगित पर नाचती मृत्यु नित वीतकाम
निर्मल जीवन की मृत्यु-क्रीत

जगती में मृत्यु महा रहस्य
मानव-जीवन में एक मृत्यु ही अटल सत्य शाश्वत अवश्य
जीवन में कोई अशिव वस्तु यदि है तो वह है मृत्यु भीम
उससे भी अधिक भयंकर है उसका भय पैशाचिक असीम
वस्तुतः मृत्यु-कल्पना दुखद, वह महा भयानक, महा घोर
जीवन-विकास के क्रम का ही अवसान मृत्यु, हृद्-प्राण-चोर
उसकी दंष्ट्रा में जगत् सस्य

प्रत्येक मनुज की यही चाह
वह सुख से जीवित रहे सदा, जीवन में आ पाये न दाह
यद्यपि जीवन का अंत अवश्यंभावी, परिवर्तन-विहीन
पर, नाम मृत्यु का सुनते ही भय-विह्वल होता, कंप-लीन
किस भाँति अधिक से अधिक प्राप्त हो जीवन, रहता यही ध्येय
ईप्सित कामना किया करता, इस प्रकार अनजाने, अगेय
बढ़ता रहता है मृत्यु-राह

अष्टम सर्ग

कुछ भी न असत्-उत्पन्न, जात
है असत् मनोभव, जब मन कुछ देखता न सुनता ध्येय-बात
जब मन से लक्ष्य दूर होता, इतना बाहर उसका निवास
अस्पष्ट, अगोचर सत्ता का किंचित् भी होता नहीं भास
"कुछ नहीं यहाँ," है शून्य यहाँ, यों कर उठता तब चीत्कार
पर शून्य अनंत, अजस्र-जात

तम में इसका सच्चा स्वरूप
किंचित् भी मृत्यु-विषय में हम जो जानें, वह है बाह्य रूप
जो यह कहते हैं हमने तो इसका रहस्य सब लिया जान
वस्तुतः बाह्य के अंतर की ही होती उनको झलक, ज्ञान
उनके अल्पागम नयनों में जाता है केवल चौंध बाह्य
आवरण, मृत्यु के स्तर असीम, जीवन से परे न गम्य ग्राह्य
शतशः सहस्रशः अंध कूप

विस्तृत अचलों के तुंग शृंग
उनसे निस्सृत सरिता जैसे लहरों में भर-भर कर उमंग
भू-भागों, उपत्यकाओं, वन-प्रांगण को करती हुई पार
विश्राम न लेती उस क्षण तक जब तक न अब्धि में लीन धार
वैसे ही जीवन भी मिलता है मृत्युकणों से एक रूप
जीवन का अंतिम लक्ष्य मृत्यु-आलिंगन, सम्मिश्रित स्वरूप
ज्यों कलि-संपुट में बद्ध भृंग

ऐसा भी आता कभी काल
जिसके क्षण साधारण क्षण से अत्यन्त भिन्न होते कराल
उस क्षण खोते भौतिक अभाव, संताप स्वयं अस्तित्व-ज्ञान
जीवन में इतना अंधकार, त्रुटियाँ, संघर्षण विद्यमान
जिनकी कल्पना मात्र से दुख, प्राणों ऊपर अज्ञात भार
आहत हो यत्र तत्र रक्षण के लिये किया करते पुकार
वह काल मृत्यु का कृष्ण जाल

पूर्णता मृत्यु, जीवन न पूर्ण
संघर्ष स्थूल जब जीवन को ढक लेता है कर सूक्ष्म चूर्ण
अपनी सामयिक संकुचितता को भुला चिरंतन आत्म-भाव
उसके विस्तार किया करते नवसृष्टि, चतुर्दिक ले प्रभाव
उत्थान-पतन का संसृति के यह ही रहस्य, मानव शरीर
भौतिक, अतर आध्यात्मिक हैं, दोनों मिलकर हो पार तीर
जीवन के स्वप्न अतः अपूर्ण

सत्ता-सीमित त्रुटि-हीन ज्ञान
जिसका आश्रय लेकर निगूढ़ दूरस्थ उलझनों का वितान
सुलझाना मनुज चाहता, होता अतः विफल, अस्पष्ट ध्वान्त
देती भाषा कुछ नहीं काम, उस स्थल पर नीरव नयन शान्त
वाणी से कुछ कह देते हैं, जीवन रहता अस्पष्टधूम
वह मृत्यु-रहस्य जानने को इच्छाएँ व्याकुल घूम घूम
छाया पथ पर अग्रसर अजान

जीवन के पथ पर प्रगतिशील
मानव पल-प्रतिपल परिवर्तन पाता जाता कल्पनाशील
वस्तुतः जगत्, यह प्रकृति स्वयं क्या बदल रही ? पर यह न बात
निर्मित जिन स्वयं उपादानों से हम वे क्रमशः हुए पात
वे निज गुण धर्मों को तजते, होता यों परिवर्तन प्रतीत
बचपन यौवन-इच्छा वृद्धावस्था में जाती स्वतः बीत
यों स्वतः पहुँचता मृत्यु-काल

सर्वत्र मृत्यु है विद्यमान
हिम-आवरणों में ढके अद्रि नभ में निहारते शान्त-ध्यान
सागर के विस्तृत अंतर् में अगणित उठती रहती तरंग
ये ज्योति पिंड जो सूर्य चन्द्र जिनके उर में उल्लास-रंग
नीलांबर बिखराता रहता आलोक-उषा में मधुर हास्य
शाद्वल-अंचल-अवगुंठन में अँगड़ाई लेती धरा लास्य
इनके भी हरती मृत्यु प्राण

है मृत्यु शान्ति का अमल अंक
मलयानिल सा शीतल, सुखकर, ज्यों शरद्-काल में सम मयंक
परितः अशान्ति, जग का कण-कण आप्लावित इससे दिवस रात
प्रति प्राणों में, प्रति कंपन में प्रतिपल अशान्ति का चिर प्रपात
बाहर अशान्ति से आने के करता मानव नाना प्रयत्न
जीवन अशान्ति है, मृत्यु शान्ति, जीवन में एक अशांति रत्न
कमलों को धारण किये पंक

तुम किस चिन्ता में हुई लीन ?
उसने देखा सामने खड़ी उसकी ललिता दासी अधीन
वह कहती जाती थी देखो, कितना ऊपर चढ़ गया घाम ?
कब जगा गई थी पहले मैं, घर भर का मैंने किया काम
तुम क्यों उदास सी बैठी हो ? क्या तुम अस्वस्थ हुई, कहो न ?
मैं देख रही हूँ खड़ी-खड़ी, तुम चिर वेला से रहीं मौन
मैं समझ गई तुम मातृ-हीन

पर, इस चिन्ता में कुछ न प्राप्त
आवश्यक कामों से निबटो, दुख, चिन्ता को कर दो समाप्त !
उसने कर फेरा मस्तक पर, फिर चली गई वह कर दुलार
पर उलझन में उलझी मीराँ के अंतर पर पड़ गया भार
सोचने लगी वह यों, इसका जीवन कैसा दुखमय अनन्त
पति-सुत-सुख से वंचित बचपन की विधवा दुखिया हंत-हंत !
जीवन-कण-कण में कष्ट व्याप्त

आधार रहा बस तिरस्कार
मा-बाप अल्प वेला में ही मर गये, रह गई निराधार
अपमान, लाञ्छना में पल कर पल-पल क्षण-क्षण दिन गये बीत
यौवन आया, पर टुकड़ों पर कामी कुत्तों ने किया क्रीत
जारज संतान हुई वह भी जी सकी नहीं, पति स्वर्ग-पार
वासना-मंच पर हार गई यह कर कर सब क्रीड़ा-विहार
जर्जर नौका, मझधार-धार

मीरां

मेरी मा मर कर स्वर्ग-धाम
जब चली गई तो इसने ही मा की ज्यों मेरा किया काम
मैं हुई बड़ी, बचपन न रहा, पर इसका पावन वही प्यार
इसके सम्मुख अब भी नन्हीं नन्हीं बिटिया पाती दुलार
जीवन की बड़ी बड़ी झंझा इसके अंतर् में आज लीन
जीवन कंटकमय, पर फिर भी सुन्दर उपदेश वही अदीन
अंतर् में प्लावित 'श्याम श्याम'

स्मृतियों में अब भी एक बात
करुणा-पूरित, यातना-भरी जो कही इसी ने एक रात
बिटिया मेरा नन्हा नन्हा बच्चा ज्वर से था अति बिमार
कोई भी पास न आया जो, हर लेता कुछ तो व्यथा-भार
जब तक यौवन तब तक उसकी रहती थी प्रतिपल मची लूट
जीवन में बारंबार अथक पीती आई हूँ गरल घूँट
शिशु का भी रह पाया न गात

ऊपर से गोरा है स्वरूप
पर, अंतर् में अंकित अगणित पशु-जन-बल का वासना-रूप
व्यभिचार, दुराचारों का तम इसके अंतर् में विद्यमान
करुणा-क्रंदन, चीत्कार घोर जीवन भर छूते रहे प्राण
इसके अंतर्मन, कण-कण में बाधा, पीड़ा, चिन्ता, विषाद
फिर भी मेरी त्राता बन कर देती रहती आल्हाद-याद
स्वर्गंगा सी शीतल अनूप

परिवर्तन अति गहरा विलोक
नीरस सी थी, वह उन्मन थी, छाया था मन में अधिक शोक
वह झाँक रही थी दूर-दूर वातायान से, थे अलस नेत्र
अलसाये से ही दीख रहे थे हरे भरे भी सजल क्षेत्र
उसकी नव साथिन विधवा थी, वह नहीं सोच पाई उपाय
कैसे जीवन दिन काटेगी, जीवन भर केवल 'हाय-हाय' ?
अभिलाषा कोई सके रोक ?

अष्टम सर्ग

उसको कुछ ऐसा हुआ ज्ञात
इस मर्त्य लोक में तो केवल दुख ही दुख है आघात, घात
ये चाची, ताई सब परिजन चल देंगे एकाकी अजान
जीते जी के ही झगड़े हैं, मिथ्या है सारा जगत्-गान
जयमल वयस्क हो गया साथ खेलता कूदता नहीं आज
सब की ही नई बसी दुनियाँ, सब अपना-अपना लिये काज
उर लगा गूँजने गीत-स्नात

दूर हुए तुम, दूर हुआ मैं, क्षण-प्रतिक्षण का मिलन कहाँ अब ?
वे भी दिन थे साथ रहे हम, प्राणों में झंकार नई थी
नन्हें मन के प्रिय सपनों में निर्मल मलय-बयार बही थी
श्रद्धा थी, विश्वास घना था, तब दुनियाँ थी और निराली
झूँठ-साँच, सुख-दुख-द्वन्द्वों से दूर रही जीवन की डाली
एक प्राण थे, एक घ्राण थी, भेद-भाव का नाम नहीं था
घन-छाया थी, ग्रीष्म-काल की दोपहरी का घाम नहीं था
जीवन बदला, कंटक पथ पर रुकते चलते जलन यहाँ अब

★

नवम सर्ग

★

मंदिर का घंटा-नाद बना आवाहन
मुखरित मृदंग था आकर्षण का वाहन
पथ दीप-वर्तिकाएँ आलोकित करतीं
आरती डगों में स्फूर्ति, चपल गति भरती

पीड़ित जन की भारती व्योम में छाई
ऊपर की ओर लगीं आँखें भर आईं
मस्तक था नत आभा-गत थे नर नारी
उद्वेलित अंतर्-प्रान्त कष्ट था भारी

जन-जन के प्रिय युवराज रूप-बल-शाली
अत्यन्त रुग्ण थे भोज, घटा थी काली
भ्रमरों के पथ में उलझ गई थी नौका
दुस्सह किंचित् प्रतिकूल पवन का झोंका

मंदिर, घर-घर में, द्वार-द्वार आराधन
हे प्रभु! युवराज हमारे पायें जीवन
नंगे पाते थे वस्त्र, भीख भिखमंगे
कारा-बन्दित स्वाधीन, ज्वलंत उमंगे

पूजा का स्वर, जन का करुणा कोलाहल
क्षण भर में लीन हुआ अंबर में चंचल
सब अपने-अपने कर्म-निरत नारी-नर
उदयाचल पर कुछ चढ़ आये थे दिनकर
क्षण भर पीछे आ पहुँचे राज-चिकित्सक
सब कुछ निहार कर चले गये ज्यों शिक्षक
निशिदिन आवश्यकतानुसार आ जाते
संतोष, धैर्य अति परिजन को दे जाते

ज्यों-ज्यों करते उपचार रोग बढ़ता था
तन होता था कृश, वह ऊपर चढ़ता था
मीराँ का सारा अस्त-व्यस्त था वैभव
सूनी-सूनी सी थी, ज्यों मिला पराभव

जल-हीन बल्लरी सी थी वह कुम्हलाई
उज्ज्वल भविष्य म्रियमाण, अँधेरी छाई
दुष्कर उसकी पीड़ा विपत्ति का वर्णन
संताप-व्यथा में झुलस रहा था सर्जन

वह छाया की ज्यों थी सेवा में खोई
इतनी तत्परता कर न सकेगा कोई
कितनी ही काली निशा दृगों में काटी
अपनी सुख-साधन-वस्तु जनों में बाँटी

पीती जल भी न जरा, हो जाती संध्या
पति-सेवा में तल्लीन धन्य वह वंद्या
निशिदिन शय्या के पास मौन रहती थी
भावों की सरिता में तृण सी बहती थी

प्रिय कहते तुम क्यों व्यर्थ कष्ट लाती हो?
पीओ जल, भोजन क्यों न प्रिये! पाती हो?
मैं जीऊँगा अब नहीं, मृत्यु चढ़ आई
जीवन-दीपक पर क्षुब्ध वायु मँडराई

सुनती वह, उसका हृदय टूट सा आता
मस्तक बोझिल, संव्यथित घूम रह जाता
जीवन का सारा स्नेह गिरा में भर कर
आशा भर देती मस्तक पर कर धर कर

मृदु कर का अमृत-स्पर्श शान्ति भर देता
जीवन की व्यथा निराशाएँ हर लेता
प्रिय मुस्काते मीराँ को स्वयं हँसाने
आशा लहराती, मिलता सुख अनजाने

सोचते कुँवर, यदि मृत्यु हो गई मेरी
तो हतभागा यह कहाँ रहेगी चेरी ?
धन-धान्य सभी होगा विलास वैभव का
पर, आशाओं में नाम न कुछ कलरव का

मैं नहीं रहूँगा तो यह भी न रहेगी
मैं मुक्त रहूँगा, पर यह कष्ट सहेगी
हे नारी ! जीवन हंत, हंत यह तेरा
विधवा का जीवन व्यर्थ, कभी न सबेरा

सोचते-सोचते करुणामय हो जाते
चिन्ता - चक्रों में उलझ-उलझ सो जाते
सपना आता मीराँ प्रवाह में खोई
आधार - हीन असहाय जान कर रोई

मकरों का लोलुप झुंड रौद्र मुख खोले
दंष्ट्रा में ग्रास बनाने अविरत डोले
चौंकते अधिक करुणा-क्रंदन सा करते
मीराँ झकोरती, ध्यान वास्तविक धरते

झुंझलाहट होती उन्हें स्वयं अपने पर
मँडराता बारंबार ध्यान सपने पर
करते विचार, सपने मिथ्या होते हैं
दिन की चिन्ता आती जब हम सोते हैं

होता कोई यदि शत्रु जूझ वे लेते
पर रोग भयंकर, शस्त्र काम कब देते ?
मीराँ का मुख निहारते भोला-भाला
सन्तोष, शान्ति से भरा ज्वलंत निराला

जीवन की मन में लिये हुए वे आशा
चिन्ता की करते चूर्ण सतत अभिलाषा
छूटता शक्ति का साथ किन्तु जाता था
जलता था दीपक, स्नेह रिक्त पाता था

चलता था शक्ति-अशक्ति - द्वन्द्व -संघर्षण
परिचर्या, मधु स्वर करते अमृत - वर्षण
सायं प्रात: मीराँ गिरधर के सम्मुख
करुणा-स्वर में बिखरा देती अपना दु:ख

उसकी स्वर-लहरी में तन्मयता होती
गायन कहना अन्याय, करुण बन रोती
जीने मरने का प्रश्न अधिक गहरा था
रण आशा और निराशा में ठहरा था

प्राणों पर काल - घटा घिर-घिर आई थी
मृतप्राय कला विश्वास न खो पाई थी
कितने ही चन्द्रायण व्रत, घनी तपस्या
करने का वह संकल्प ले चुकी वश्या

कुछ क्षण निकाल कर तरु सींचा करती थी
पत्थर के आगे दृग मींचा करती थी
करती थी उदर-भरण पशु-विहग गणों का
देती सविता को अर्घ्य सुनीर-कणों का

प्रत्येक श्वास में पति-जीवन की आशा
संवेदनशील पवित्र हृदय की भाषा
उल्का में भी पति-हेतु कूद सकती थी
पति-जीवनार्थ निज प्राण मूँद सकती थी

मृत्युंजय का जप-जाप, पठन चलता था
मा-बापों का उर पीड़ा से जलता था
ग्रह-शान्ति, दान-दक्षिणा आदि से करते
उर टूट चला था, अश्रु दृगों से झरते

वीणा के मंजुल स्वर, पायल की ध्वनियाँ
थे प्रचुर निराशामय, उन्मन कामिनियाँ
मदिरा के मादक प्याले रिक्त पड़े थे
नीरस, हताश कंचन-मधु-सिक्त घड़े थे

तीव्रता नहीं थी नव-युवती-नयनों में
सुन्दर कोलाहल शान्त हुआ अयनों में
हय-गज चलते थे, पर न रही चंचलता
ऊँटों का प्रतिपल मत्त हृदय न मचलता

अविराम चतुर्दिक् एक खिन्नता छाई
रोगी के व्याकुल रहे अत्यधिक भाई
उपचार कठिन-से-कठिन नित्य करते थे
सबको देते सान्त्वना, स्वयं डरते थे

चिन्ता करते रोगी न कभी निज दुख की
चिन्ता थी मीराँ के नव-जीवन-सुख की
कैसे दिन काटेगी न समझ पाते थे
दुस्सह ज्वाला से शान्त न रह जाते थे

कितने ही गायन जो उर छू जाते थे
रुग्णावस्था में भी कुमार गाते थे
कंठस्थ हो गई थीं गीतों की कड़ियाँ
जो यथा समय बिखराती मीराँ लड़ियाँ

जब स्वस्थ रहे तब प्रतिदिन ही सुनते थे
जीवन का कला-प्रपूर्ण नीड़ बुनते थे
मीराँ भावों में खो जाती, बह जाती
सम्मिलन देख संस्तब्ध लहर रह जाती

नौका तरती चंद्रिका शुभ्र अंचल में
मुख पास किये दोनों निहारते जल में
चंचल लहरों की भाँति उमंगें उड़तीं
आलिंगन के मधु-पाशों में आ जुड़तीं

आकर्षित करती दूर क्षितिज की माया
चलदल-वट-कुल की सघन पल्लवित छाया
तट पर चल जल में भीतर चरण डुबाये
यौवन के मंजुल मधुर भाव मँडराये

अब भी कुमार गाने को प्रेरित करते
अपनी परिस्थिति का ध्यान नहीं कुछ धरते
मीराँ गाती आशा के हर्षित गाने
पर वे कहते गत क्षण की कथा सुनाने

दुख में संवेदनशील हृदय हो जाता
पीड़ित नर दुख के गायन से सुख पाता
पीड़ित मन पर पड़ता प्रभाव पीड़ा का
सम्बन्ध नहीं कुछ रह जाता क्रीड़ा का

बीता युग दुख की ग्रन्थि खोल देता है
अंतर् चिन्ताएँ अधिक मोल लेता है
दुख के प्रवाह में सब कुछ बह जाता है
दुख में मानव मानव ही रह जाता है

कितने ही जीवन के रहस्य चिरपरिचित
प्रिय कह देते अब भावों में बह कलुषित
कहते वे प्रिये, न जाने कितनी बातें
मैंने की हैं जन से, न अनृत ये बातें

मीराँ कहती, ये बातें अब जाने दें
पीछे कह लेना, अवसर तो आने दें
विश्राम करें, चिन्ता की बात न होवे
बोलें न अधिक, दिन रात प्रात भर सोवें

जो बीत गया सो बीत गया, क्या चिंतन ?
तन पर प्रभाव फैलाता उद्वेलित मन
बीते क्षण चिन्तन का न आज कुछ अवसर
जब स्वस्थ रहेंगें, सभी सुनूँगी जी भर

वल्लरियों के झुरमुट में दूर्वा-दल पर
तन्त्री के मंजुल तारों में रुल स्वर भर
जो संध्या के अंचल में गीत सुनाया
गाओ फिर, अंतर् नहीं प्रिये ! भर पाया
बोलीं वह, मैं तो भूल गई क्या गाया ?
मैं जो कुछ कहती वह न आपको भाया ?
मैं कहती हूँ अब आगे आप न बोलें !
आराम करें, मुख नहीं जरा भी खोलें !

क्या करूँ प्रिये ? मन नहीं मानता मेरा
यह कौन जानता कब उठ जाये डेरा ?
आया हूँ तो जी भर गायन तो सुन लूँ
कर रिक्त न रह पायें, मैं कुछ तो चुन लूँ !
मुझको अब जीवन का विश्वास नहीं है
आये भी और न आये साँस नहीं है
कैसी बातें करते हैं यह न बिचारें
होवेंगे सुन्दर स्वस्थ न साहस हारें

मीराँ ने उनके मन की बात बिचारी
तंत्री को लगी मनाने वह सन्नारी
अच्छा सुनिये, मुस्काती थी, गाती थी
पति सुख पायें, बस इसीलिए गाती थी

मीन कितनी ही न जाने
मग्न थीं अठखेलियों में
थे मधुर झंकार करते
भ्रमर अगणित बेलियों में

नवम सर्ग

उड़ रहा सौरभ लिये
शीतल पवन था मंद सन् सन्
मुग्ध-चितवन झर बजाता
था विपंची झनन् झन् झन्

व्योम में आ-जा रहे थे
गीतिमय हो विहग सारे
मंद मुस्काते सुमन थे
स्वप्न-रत से मौन धारे

धूलि-धूमिल हँस रहा था
व्योम में भी एक तारा
पर न जाने थे कहाँ तुम !
शून्य मानस खोज हारा
शून्य नयनों ने निहारा

स्वर लहरी का सुन्दर प्रभाव पड़ता था
अमृत का मंजुल तत्व मुक्त झड़ता था
बोले प्रिय, तुमने मेरा चित्र बनाया
मेरा होने पर भी मैं देख न पाया

मीराँ बोली, वह तो है अभी अधूरा
दे दूँगी वह जब हो जायेगा पूरा
अवकाश न, पूरा मैं न उसे कर पाई
रेखाओं में मैं रंग नहीं भर पाई

हँस कर बोले प्रिय व्यंग्यमयी मधु वाणी
यदि नारी हो तो ऐसी हो कल्याणी
नाचे, गाये भी, रेखाचित्र बनाये
कविता-समता कोई न कभी कर पाये

प्रिय हँस देते तो भाग्य जाग से जाते
अंतर्मन के उल्लास मधुर बन जाते

संतृषित, क्षुधित को अमृत सा मिल जाता
अभिराम उमंगों में उत्सव छा जाता

वह हँसती थी इसलिए कि प्रिय हँस पायें
संस्मरण सुनाती व्यथा भूल वे जायें
गाती थी यों आशा से उर प्लावित हो
तम के विस्तृत अंचल में पंकज सित हो

प्रिय बोले, मुख पर अपलक नयन गड़ाकर
भावों से भाव, नयन से नयन लड़ा कर
पर प्रिये, ज्ञात होता है मुझको ऐसा
वह चित्र रहेगा यों वैसा का वैसा

जिस कलाकार ने मेरा चित्र बनाया
उसकी कुछ ऐसी ही विचित्र सी माया
वह मेरा रेखा-चित्र मिटाने वाला
रेखा पर फिरने वाला है कर काला

उसका है काम मिटाना और बनाना
वह रेखाचित्र बनाता है मनमाना
बनने पर वह फिर हाथ फेर देता है
बस इसी काम में वह नित रस लेता है

जिसको बनने से पूर्व मिटा देता है
इसका मतलब है स्पष्ट, न रस लेता है
वह रेखाचित्र नहीं सुन्दर हो पाया
उसकी सुन्दरता से न हृदय भर पाया

वह पुनः मिटा कर उसको सुन्दर करता
रेखा में गहरा रंग निरन्तर भरता
तब तक वह यों अविरल करता रहता है
जब तक सुन्दरता से न हृदय भरता है

यों नित्य न जाने कितने चित्र बनाता
कितनों पर ही वह हाथ फेरता जाता

उसकी तूलिका निरन्तर चलती रहती
नित नव्य कल्पना नव भावों में बहती
उसको न हर्ष है, और नहीं पीड़ा है
उसकी तो अपनी यह केवल क्रीड़ा है
उसका कोई भी चित्र नहीं है प्यारा
कोई भी चित्र नहीं है उससे न्यारा
कोई भी ऐसा चित्र नहीं बन पाया
जिसने उस कलाकार की जानी माया
वह क्यों करता यों ? यह तो वह ही जाने
वह जान बूझ कर करता, या अनजाने
चित्रों में जितना रंग-प्राण भरता है
बस उतना ही वह आकर्षित करता है
इसके पीछे कुछ नहीं मूल्य रह जाता
वह रेखाचित्र नहीं सुन्दर रह पाता

कितने ही रंग-बिरंगे चित्र निराले
कितने ही केवल हो जाते हैं काले
कितनों की भाव भंगिमा मीठी होती
आभा के आगे नीरस लगते मोती
रेखा-चित्रों से पृथक् नहीं निर्माता
निर्माता का सबसे समान हो नाता
बसते हैं वे सब निर्माता के मन में
निर्माता अंकित चित्रों के कण-कण में
उसके किंचित् इंगित में नाश समाया
ईषत् इंगित में निर्माणों की काया
वह कर्ता, हर्ता, भर्ता, भाग्य-विधाता
स्रष्टा, प्रलयंकर शंकर, वह ही त्राता
उसकी अंगुलियों में अमृत की माया
जिसको भी छूती अंगुलियों की छाया

वह प्राणवान्, गतिशील, दिव्य, ज्योतिर्मय
वह दिव्य चित्र, उसको न विनश्वरता-भय

चाहा तुमने भी रेखा-चित्र बनाना
हो कलाकार सुन्दर तुम भी, यह माना
उस कलाकार की किन्तु सृष्टि न्यारी है
उसकी प्रसन्नता बिना कला हारी है

जगती में जितने कलाकार मतवाले
उनमें उसके ही अंश ज्वलंत निराले
वे भी प्रतिपल निर्माण, नाश करते हैं
क्या बना, बिगाड़ा, नहीं ध्यान धरते हैं

उसकी इच्छा ऐसी कि मैं न रह पाऊँ
सौन्दर्य-हीन उसको कब तक मैं भाऊँ ?
मुझ से उसका कुछ हृदय नहीं भर पाया
इसलिए तुम्हारा चित्र नहीं बन पाया

आश्चर्य-चकित थी, नहीं जान कुछ पाई
उनकी बातें दुख-पूर्ण, नहीं कुछ भाई
फिर भी बातों में तथ्य, सत्य लगती थी
काली छाया सी आँखों में जगती थी

वह सोच रही थी यह दर्शन की धारा
वह निकली कैसे त्रस्त-ध्वस्त कर कारा ?
दर्शन की धारा का प्रवाह था तीखा
पर, उसने धीरज धारण करना सीखा

यह ज्वर-प्रलाप या अशुभ मृत्यु-संदर्शन ?
जीवनी शक्ति का शान्त हुआ संघर्षण ?
यह कलामयी वाणी ईश्वर-प्रेरित है ?
या भावों में छाया तम-तोम असित है ?

वह भय-विह्वल होगई, कंठ कुम्हलाये
वह समझ रही थी नहीं कि क्या कह जाये ?

लड़खड़ा पड़ा स्वर, बोली, क्या कहते हैं !
रस-हीन कल्पना में निष्फल बहते हैं
यह प्रचुर निराशा इतनी ठीक नहीं है
जीवन की इतनी पतली लीक नहीं है
होगा न बाल भी बाँका, मैं कहती हूँ
ऐसे भावों में मैं न कभी बहती हूँ

जीवन के पथ में रोग, दोष आते हैं
अपना विषमय दुष्प्रभाव दिखलाते हैं
पर, थोड़े दिन में ऐसे क्षण भी आते
जिसके प्रवाह में रोग, कष्ट बह जाते

उनके जाने पर जीवन लहराता है
दूनी उमंग से पथ पर बढ़ पाता है
कंटक-कुल पर चलना जीवन की भाषा
वह जीवन क्या, जिसमें न कहीं कुछ आशा ?

ऊँचे पर्वत पर चढ़ने में दुख लगता
पर नीचे आने में कितना सुख जगता ?
घाटियाँ पंथ की जीवन सबल बनातीं
काली कादम्बिनियाँ अमृत बरसातीं

तम के विस्तृत अंचल में दीप मचलता
भीषण पथ पर विद्युत् का नर्तन चलता
निर्जन भयावने उर में चट्टानों के
शत शत निर्झर बहते हैं मधु-गानों के

मुझको गहरा विश्वास सदा जीवन का
कर सके न विचलित उसे कष्ट कुछ मन का
पीड़ा-कष्टों के क्षण सब लौट गये हैं
कर रहे प्रतीक्षा अब क्षण सुखद नये हैं

वह भाँति-भाँति के सुन्दर वचन सुनाती
जीवन में मंगल आशा मधुर जगाती

कुत्सित श्रम की कालिमा सतत धोती थी
पति सुनते, वह भी ध्यानमग्न होती थी

सम्मोहित थे वे उसके भोलेपन पर
काली छाया थी उनके कुंठित मन पर
उसकी विद्वत्ता से वे आकर्षित थे
वाग्मिता, मधुर भाषण से अति हर्षित थे

हँसते थे वे, था आशा का उपक्रम भी
जग जाता अंतर् में प्रकाश, पर तम भी
वे क्षुब्ध लहरियों पर नौका से बहते
खोये-खोये से, शान्ति-हीन से रहते

वे कलाकार थे, कला उन्हें भाई थी
जीवन-नौ के अनुकूल हवा आई थी
आल्हाद छा गया, प्राण मुक्त हँसते थे
संगीत, नृत्य, कविता घर-घर बसते थे

अभिराम कला प्रतिपल विकास करती थी
जन-जन की आशा नव उड़ान भरती थी
पर, इसी समय आ गया अचानक झोंका
युवराज रुग्ण, जीवन की उलझी नौका

क्षण पर क्षण, दिन पर दिन चढ़ते आते थे
नूतन दिन, क्षण प्राचीन बने जाते थे
जग भूला था अपने दुख सुख में सीमित
पर मीराँ के उर में दुख ही दुख अंकित

वह समझाती इस तन का कष्ट घटेगा
यह पीड़ा का दुख-पूर्ण वितान हटेगा
वे हँसते, कहते तुम न समझ पाओगी
कुत्सित समाज बलवान् छली जाओगी

कह भी देते वे कभी-कभी ये बातें
वे दिन न रहेंगे, नहीं रहेंगी रातें

मैं भी न रहूँगा, कैसे रह पाओगी ?
उखड़ी लतिका की ज्यों कुम्हला जाओगी

वह दुख पाती सुन-सुन कर ऐसी बातें
उसको ऐसे ये प्रश्न नहीं कुछ भाते
कहती ऐसी बातें हैं पागलपन की
पर, व्यथा भयंकर होती उसके मन की

वे बार-बार कहते वीणा तो लाओ !
झंकृत अतीत हो ऐसा गायन गाओ !
फिर स्वयं गूँजता उनका स्वर धीमा सा
धूसरित, विकल, चुपचाप मृत्यु-सीमा सा

आज यह अंतिम मिलन है
वेदना के गान तुमने
हो व्यथित मुझको सुनाये
सित कपोलों पर गरम से
अश्रु-कण दो लुढ़क आये

हृदय को अविरल जलाती
विरह की भीषण जलन है
आज यह अंतिम मिलन है

आश-प्लावित हृदय में था
हास कितना ही न जाने
कल्पना के पंख फैला
थे उड़े कोटर बनाने

घन निराशा के हृदय में
ला रही बिछुड़न गहन है
आज यह अंतिम मिलन है

सोचता मनुज कुछ और, और होता है
जीवन का क्रम जलचर का सा गोता है

आशायें स्वर्णिल जाल बुना करती हैं
जगती के सुन्दर तत्व चुना करती हैं

प्रत्येक मनुज की चाह मिले चिर-जीवन
वैसी आशाएँ, तृप्त रहे जैसा मन
बन्धन न रहे, तन, जन, धन सब इच्छित हों
सर्वस्व चिरंतन अमृत से सिंचित हो

पर सूत्रधार कोई ही है मानव का
है क्षुद्र जीव मानव तो विस्तृत भव का
वह जैसे रखता सूत्र नाचता वैसे
जानें बीते कितने ही युग-युग ऐसे ?

इस भू पर मानव खेल खेलने आता
नश्वर जग में क्रीड़ा अपनी कर जाता
जब तक चलता है, दीपक सा जलता है
फिर सहसा उसको अन्धकार मलता है

जीवन के पथ का कुछ विश्वास नहीं है
जीवन के रथ का सहसा नाश सही है
काली कराल छाया के जब क्षण आते
कर देते निश्चय अंत, लौट कब पाते ?

सब परिजन रहे हताश, पिता, मा, भाई
हो गये कुँवर निर्जीव मृत्यु जब आई
टूटा साँसों का तार क्षीण जो अटका
मीराँ चिल्लाई, सिर धरती पर पटका

★

दशम सर्ग

★

खग-बाला कलरव-वीणा
में विरह-राग जब गाती
पंकज-कलिका की आँखें
खग-बाला पर जम जातीं

उर-कसक लिये तब अपना
सिर तरु सम्मौन हिलाते
चिर-व्यथा-व्यथित चल मधुकर
तब भावों में खो जाते

चल पवन सनन् सन् वंशी
में आतुर हो तब गाता
भावुक अभिराम सुमन-दल
अभिनव सुपराग लुटाता

नीरव प्रशान्त सर-उर में
सोई स्मृतियाँ जग जातीं
उर बेध-बेध अविरल ही
फिर आर-पार हो जातीं

कंपित चित्रित सा, कुक्कुट
तब वाह-वाह कह उठता
तब दारुण मौन-व्यथा से
उसका उर भी गा उठता

प्रिय-मिलन बस चाह मेरी
कल्पना के व्योम में खग
बन निरंतर उड़ रही, पर
वक्ष पर पड़ अश्रु-लड़ियाँ

शमन करती दाह मेरी
हृदय-धारा में चपल
उल्लास-जलगा पैरती
गंभीरता रूपी निराशा

से न मिलती थाह मेरी
आश-हय को मैं सदा
सरपट भगाती जा रही, पर
हृदय से अज्ञात कोई

रोक लेता राह मेरी
हास के उद्यान में अभि-
राम अंकुर फूटते, पर
पल्लवों के पूर्व ही तो
भस्म करती आह मेरी

(२)

कौन किसके पास, रे कह !
भावना भर-भर तृणों में
विहग ने कोटर बनाया
उड़ रहा अनजान ही अब
छोड़ निज आवास, रे कह !

सुरभि से अठखेलियाँ कर
हो गया गद्‌गद्‌ पवन था
डंठलों से उर लगा अब
ले रहा निःश्वास, रे कह !

प्रेम की दीपावली में
हँस पड़ी नव यामिनी थी
शून्य में कुछ ढूँढ़ता सा
मौन जब आकाश, रे कह !

(३)

चिर विदा की दुखद बेला

विवशता से कोटरों में
विहग - कुल निःशब्द सारे
म्लान मन, चित्रित किये से
तरु-पटल स्थिर, स्तब्ध हारे

मौन, सुध-बुध-शून्य मधुकर-
पुंज चल, उद्विग्न प्रतिपल
शून्य नभ में ताकता सा
वल्लरी-दल क्लान्त, निश्चल

श्रान्त निर्मल कल सरित्‌ का
विरह से आया हृदय भर
मुख छिपाये अंचलों में
मुकुल बेसुध डंठलों पर

यामिनी भर भर सिसकियाँ
जा रही होती व्यथित ही
मेदिनी का तप्त मानस
हो रहा था तम-मथित ही

शून्य में ही टिमटिमाता
मौन था नभ भी अकेला

(४)

दुख विहग का ही पुरातन
नीड़ है यह हृदय मेरा
आश से ही कुछ दबी चिर
व्यथा की चिनगारियों में
तीव्र जब ज्वाला उठाता
साँस का भीषण प्रभंजन
जब मधुर - जीवन - स्मरण-
सौदामिनी की लोमहर्षक
कड़कड़ाहट में निरन्तर
बरसते रहते नयन-घन
तब कहाँ से वह न जाने
मौन आ करता बसेरा ?
नव उषा की मधुमयी—
मुस्कान से जग कुसुम-दल पर
अलि - पटल अति मुस्कराते
हो निरंतर प्रेम - विह्वल
चल - सरित - चल - लहर—
प्रतिबिंबित - विटप से भर उड़ानें
सुखद कलरव से रिझाते
व्योम - श्री को विहग चंचल
पर, न जाने इस हृदय में
क्यों नहीं होता सबेरा ?

(५)

शून्य में अनजान ही यह
शुष्क पत्ती उड़ चली है

प्रात को हँसते न पाया
स्वप्न के उद्यान में भी
हो न पाया नीड़ अब तक
आश - तन्तु - वितान से भी

पर, प्रखरतम ग्रीष्म - लूओं
में सदा अब तक पली है

चुन न पाई विहग - बाला
के नवल मधु - गान बिखरे
देख पाई कुछ न माधव—
चन्द्रिका - मुस्कान भी रे!
पर, गहन - तम – जलद - छाया
से गई अब तक छली है

(६)

शेष क्या परिचय रहा अब?

सिसकियाँ भर भर कहानी
दुखद जीवन की सुनाई
कंठ घर् घर् कर रहे दुख—
तप्त आँखें डबडबाईं
हृदय भी था रो उठा तब

उड़ चले फिर हम क्षितिज को
लाँघने उल्लास लेकर
विरह - पीड़ा - व्यथित - विटपी
को अनेकों आश देकर
विटप भी था रो रहा तब

सिर भिड़ा चट्टान से—
निर्बल चरण थे लड़खड़ाये
फिर प्रतिज्ञा में तुम्हारी

दिवस कितने ही बिताये
क्रूर - चरणों तले दब दब

(७)

पद - दलित पर्ण की मर्मर मैं
विधु - हीन निशा का करुण रुदन
पतझड़ विटपी का सूनापन
मैं नीरव नभ की व्यथा मौन

तपित भू की नीरस कणिका
मुरझाये फूलों की सिसकी
गत-वैभव कलि की करुण आह
आतुर पतंग का हृदय मौन

व्याकुल सरिता का तट हताश
प्यासे चातक का आर्त राग
उमड़ी बदली के आँसू-कण
विरही-जीवन की हूक मौन
मुझसे मत पूछो, मधुप, कौन ?

(८)

अलि, मम उर की शुष्क मुकुल पर
भी आओ मँडराओ,
सूखी अति नीरस पँखुड़ी हैं
इनमें मनहर मकरंद नहीं
नव चितवन, नूतन रंग, मधुर
उड़ता पराग स्वच्छन्द नहीं
अपने इसके उर की फिर भी
आओ, कह, सुन जाओ !
उर की आशा उर में ही ले
खिलने से पहले सूख गई

स्मृतियाँ अब भी कुछ रेखा-सी
उर में अंकित हैं कहीं - कहीं
पहले की ज्यों फिर खिल पाये
ऐसी तान सुनाओ !

(६)

अलि ! सूख चुका सब कुछ मेरा
बस आँखें ही केवल जलमय

टूटे उर-वीणा तारों में
जीवन के मधु आधारों में
मानस-द्रावी झंकारों में
बजती बस केवल करुणा-लय

उल्लासों की भी बात नहीं
आशा से पुलकित गात नहीं
सुख की रिमझिम बरसात नहीं
होता बस केवल क्षय पर क्षय

सुख की बदली भी चली गई
आशा-वीणा भी टूट गई
कसकें अब उठतीं नई - नई
उर तड़प-तड़प करता अभिनय

मिट गई हास की हरियाली
बुझ गई रास की दीवाली
घनघोर घटा दुख की काली
है बरस रही कर मच रहा प्रलय

जीवन की स्मृतियाँ उर में भर
झर झर झर झर झर झर झर झर
बह रहा प्रबल पीड़ा -- निर्झर
आवर्तों में अंतर - तल - लय

(१०)

सुखमय जीवन में पले हुए
जानो क्या पर - पीड़ा मधुकर ?

जीवन में आया कभी नहीं
जी भर कर हँसने का अवसर
बहते रहते हैं दृग झर-झर
जानो क्या उस जलधर का उर ?

जीवन में जिसने कभी नहीं
सुख की छाई देखी बदली
नीरस, हताश, उस पत्ते का
जानो क्या करुणामय मर्मर ?

झंझा के भीषण झोंको से
सुखमय उड़ गया नवल कोटर
चेतना - शून्य उस नव खग का
जानो क्या पीड़ा-पीड़ित-स्वर ?

(११)

मेरे उर की शुष्क मुकुल भी
कहो मधुप ! क्या कभी खिलेगी ?

पल-पल प्रतिपल सौरभमय कर
अंतस्तल के गहन विपिन को
अंतर्धान हुई जो सहसा
आल्हादित कर व्यथा-मलिन को

कहो न, खोई हुई सुरभि वह
मुझको क्या फिर कभी मिलेगी ?

मत्त शिखी से नव जलधर के
रिमझिम-रिमझिम लयाभिनय में

शष्पाच्छादित गह्वर - गुँजित
विहगों के मनहर कलरव में
मंद - मंद मलयानिल से रे !
पूर्व भाँति क्या कभी हिलेगी ?

(१२)

मेरे जीवन का सूनापन
उर चीर - चीर आ जाता है
नीरव नयनों में जल-कण बन
जीवन - संस्मृतियाँ स्मरण करा
कर देता है दूभर जीवन

उर में अवीरल चुभता रहता
तीखा - तीखा कंटक सा बन
मानस अम्बर में छा जाता
घनघोर घटाएँ दुख की बन

अन्तर् विदीर्ण कर धर देता
कोमल तम मन पर व्यथा गहन
भयदायक प्रलय-बाढ़ सा बन
कर देता अति ही नीरस मन

(१३)

बुद्बुदों को कौन जाने ?
ग्वाल, वैभव-हीन नीरव
ताप-बेसुध बल्लरी पर
भूल कर भी विहग कोई
आ न पाता चहचहाने

पद-दलीत नित करुण, नीरस
सुरभी-वंचित सुमन दल पर

नृत्य-तन्मय भ्रमर कोई
आ न पाता गीत गाने

जीर्ण पर्ण-विहीन गत-रस
शून्य डन्ठलमय विटप पर
मृदुल तिनके ला न पाती
गिलहरी कोटर बनाने

(१४)

पतझड़ - विटपी - पीड़ा से
दुखिया बदली रो देती
तापित भू भी आँसू से
अपना अंचल भर लेती

अविरल चीत्कार मचाता
दुख से बेसुध हो दादुर
नतमस्तक बैठे रहते
हो मौन विहग शोकातुर

सिसकी भर - भर विपटी से
लड़खड़ा पवन टकराता
चातक दारुण पीड़ा से
अविरल ही रुदन मचाता

रह - रह कर विपटी बेसुध
सिर धुनते मौन व्यथा से
नीरव, पीड़ित हो पड़ते
अचला पर फूल लता से

निःश्वासें से पतझड़ - तरु
रो - रो कर उठता घर्घर
उसके भी चलते रहते
नयनों से जल-कण सर् सर्

(१५)

बादलो, चुपचाप बरसो
याद आती प्राण धन की !
आँसुओं की धार से जो
शान्त थी कुछ, आज फिर वह
बेध अंतर्मन भयावह
बढ़ रही है व्यथा मन की

नयन - तल - संस्रोत को
झर-झर निरंतर है बहाती
पड़ निराशा-व्योम से चिर
हृदय-धारा विरह-घन की

स्नेह-प्लावित मधुर-स्मृतियों
के व्रणों से व्यथित उर में
चिर विरह-पवमान-प्रेरित
धधकती ज्वाला मिलन की

(१६)

मत पपीहा, प्रिय कहाँ कह !

मधुर जीवन की कहानी
हृदय की अभिलाष मंजुल
शूल बनकर वेदना की
चुभ रही है तीक्ष्ण रह-रह

सरल मन को बना व्याकुल
घन निराशा-हृदय नभ में
ला, हृदय को चीर दुर्दम
तड़ित् उठती है भयावह

वेदना के वेग से रे
हृदय की चंचल सरित् में

शान्ति के आधार मंगल
जा रहे हैं दूर बह-बह

(१७)

विटप से मुस्कान भर फिर
घुल गई नीरस लता भी
बाहु में ऋतु-राज को भर
गा उठी फिर कोकिला भी

विधु सुखद कर-अंशुओं में
हँस उठी फिर यामिनी भी
नील नभ से आ मिली फिर
थिरकती सौदामिनी भी

प्रेम-विह्वल हो उठी प्रिय
पा सरित् अभिसारिका-सी
रसा भी घनलय हुई फिर
नृत्य-तन्मय गायिका सी

नवल सौरभ चल पड़ी-
उन्मत्त सी फिर पवन-सँग-सँग
छोड़ अवगुंठन मिली फिर
मुकुल भी मकरंद-पी सँग

फुदक चहकी खग-कुमारी
विहग से अठखेलियाँ कर
हँस उठी तट से लहर मिल
प्रबल सुख से नयन भर - भर

हाय, पर हृदयेश मेरे
कब मिलेगें कौन जाने ?
संस्मरण पर दिन बिताने

(१८)

नव-नव छविमय शतदल शतदल
अविरल हँस हँस कर तरल सरल
हिलमिल खिलखिल कर नवल-नवल
कलि कुल भी मुझे खिला न सके

जगमग जगमग जगमग जल जल
नीरव तममय उर में अविरल
अगणित, असीम पल-पल प्रतिपल
तारे भी ज्योति जगा न सके

मादक-मादक उर-हर नव स्वर
में बेसुध अविरल गा गा कर
प्यारे-प्यारे नववय मधु-कर
टूटी उर-वीणा बजा न सके

प्रियतर, सुखकर, मधुमय शैशव
में पले हुए नव नव अभिनव
मनहर मनहर कर कर कलरव
नभचर भी मुझे हँसा न सके

(१९)

सूखी कलियाँ नभ में उड़-उड़
कहती जग से, मत प्यार करो !

आशा के स्वर्णिम सपनों की
डाली पर हो मधु-गान-मग्न
खग - बालाओ ! मत नीड़ रचो
नभ में ही पंख-प्रसार करो !

अपनी अभिलाषाओं को ले
अवगुंठन में ही छिपी रहो !

भोला नव उर ले अलि-गण से
कलियो ! आँखें मत चार करो !

वृक्षों की शीतल छाया में
ही बैठ खगों के गान सुनो !
नव वीचि-चाव से डग पर डग
भर सरिते, मत अभिसार करो !

नीरव निशीथ में शतदल पर
ही बैठ आत्म-चिंतन-लय हो
भावों में बेसुध हो रजनी !
तारों से मत शृंगार करो !

(२०)

उर - पतझड़ - विटपी के नीचे
करुण विरह - संध्या - बेला में
भग्न - तार - जीवन - वीणा पर
एक बात भी कह जाते तो

संसृतियों की झिलमिल झिलमिल
क्षीण ज्योति का आलम्बन ले
नयनों की निश्चल सरिता में
एक बार भी बह जाते तो

नीरस वैभव - हीन - पर्ण - पथ
से मर्मर चल पग-ध्वनि से आ
तम-मय सूखे उर-झुरमुट में
एक रात भी रह जाते तो

(२१)

पर अभी तक वे न आये
शाटिका ले व्योम - श्री भी

चल पड़ी अनजान ही में
फेंक कर गल - हार मोती
सब, निराशा ध्यान ही में
डग निशा ने भी बढ़ाये

ताकती ही नभ उषा भी
चल पड़ी, खग भर उड़ानें
शून्य में ही बढ़े अविरल
भ्रमर कितने ही न जाने
कंज से आ गुनगुनाये

आह भर संध्या गई—
कुम्हला मुँदे पंकज नयन भर
जल उठे दीपक, निराशा
ले विटप की डालियों पर
विहग फिर आ चहचहाये

(२२)

डंठल पर रो उठी कोकिला
दुखी वृद्ध सा थर्थर थर्थर
काँप - काँप डंठल हो नत-शिर
अपनी दुखमय, हीन दशा का
अनुमोदन कर उठा सिर हिला

बिलख - बिलख कर व्यथा-कहानी
दग्ध हृदय में लिये-लिये ही
बेसुध हो गिर पड़ा भूमि पर
सहसा नीरव फूल अध-खिला

नीरस तृण, व्रततियाँ, पर्ण की
हीन दशा से स्मृतियाँ जागीं
बोल उठा अंतर् से कोई
रे, इस जग में किसे सुख मिला ?

(२३)

कोटर अब नहीं बनाऊँगी
डाली टूटी, पत्ते बिखरे
साथी भी छूट गये सब रे,
उर में टूटी अभिलाष लिये
अंबर में ही बढ़ जाऊँगी

उर-मौन व्यथा से आँसू भर
जब मुझे निहारेगा अंबर
मेरा अपना परिचय मैं भी
आँसू में ही कह जाऊँगी

गा-गा कर निशिदिन आत्म-गान
निर्जन नभ-पथ पर कर प्रयाण
जग—बंधन—स्तर से ऊँची उड़
मैं शून्य-लीन हो जाऊँगी

(२४)

वह जान सके क्या सुख को ?
कर्कश चरणों के नीचे
दब-दब दारुण पीड़ा सह
जीवन में जिसने देखा
भीषण-दुख-उल्का-मुख को

जीवन में अविरल रो-रो
कर करुणा-अश्रु बहाये
देखा जिसने परितः ही
बस केवल दुख ही दुख को

खा-खा कर नीम — निमोली
तोड़े जीवन के दुर्दिन

जीवन में जो प्रतिपक्ष ही
मधु-आम्र-सुस्वाद-विमुख हो

(२५)

एक बार भी आ जाते तो
जीर्ण-जीर्ण कुछ पंखुड़ियों में
जीवन का अस्तित्व छिपाये
विटपों की गहरी छाया में
सोये सुमन जगा जाते तो

तन्तु-वितानों में अपने ही
उलझी सिकुड़ी बँधी निरन्तर
तरु-आश्रित ही लतिका की
पर-वशता दूर भगा जाते तो

भीषण झंझा से पल-प्रतिपल
इधर-उधर उड़ रहे व्योम में
संशोषित, नीरस-जीवन पर्णों
को पार लगा जाते तो

(२६)

कब न जाने प्रात होगा ?
रिक्त सरिता में न जाने
कब खिला जलजात होगा ?

तृण-पटल से ढकी अविरल
शूल–प्रस्तर–तम–मयी इन
कन्दराओं का न जाने
कब हृदय अवदात होगा ?

लाँघ पर्वत–खंड निशिदिन
दूर तक वन विजन में भी

सुरभि-सुरभित कब न जाने
यह दिगंत प्रपात होगा ?

(२७)

वह क्या जाने बंशी-रव को ?
विटपों की सघन शिखा से ही
देखा जिसने जलते दव को

जीवन की धुँधली सन्ध्या में
भी निज सौरभ दे दे अविरल
प्रतिपल कर्कश हिम-कण-कण का
आघात सहे जो नीरव हो

पत्ते—लतिका—किसलय—विहीन
जिस विटपी की शाखाओं पर
जीवन के प्रातों से लेकर
अब तक न हुआ खग-कलरव हो

(२८)

पीड़ित को आहें कौन सुने ?
अलि-गण भी सारे रूठ गये
सहवास तजा सौरभ ने भी
पत्तियों साथ ही मिट्टी में
मिल गये मधुर सुख सपने भी
अति गत-वैभव, नीरव, नीरस
ऐसे सुमनों को कौन चुने ?

किसलय—दल साथ-साथ सूखी
स्वर्णिम हरियाली जीवन की
कंकड़ ढेलों की ठोकर से
मन में ही आश रही मन की

ऐसे कर्कश बिखरे, छितरे
तिनकों से कोटर कौन बुने ?

(२९)

चलो चलें उस पार विहंगम
चलो चलें उस पार !
लतिका कोई विहग-प्रशंसित
जीवन पर मद-माती है रे !
कोई मन में आग छिपाये
करती हाहाकार विहंगम !
फूल कहीं यौवन से फूला
अलिनी में मुस्काता है रे !
कहीं विरह से बेसुध कोई
रोता बारंबार विहंगम !
पेड़ कहीं किसलय से उभरा
हँस - हँस नभ में इठलाता रे,
कोई उर - अभिलाष छिपाये
होता सत्वाहार विहंगम !
नव मधुकर पर कलिका कोई
यौवन न्योछावर करती रे !
कोई भटक - भटक करती—
काँटे - काँटे से प्यार विहंगम !

(३०)

ऊषा की अँगड़ाई से
अंबर - बाला मुस्काती
अलि - छेड़ - छाड़ से पंकज
की कलिका मौन लजाती
जब थिरक-थिरक प्रिय-स्वर में
खग - बाला विहग जगाती

स्मृतियाँ विद्युत्-रेखा सी
तब उर - पट पर खिंच जातीं
चिर विकल विटप जब लेता
निःश्वासों पर निःश्वासें
उसकी मिल जाती तापित
निःश्वासों में निःश्वासें
निःश्वासों की लूओं से
उर के किसलय कुम्हलाते
अविरल झर झर जल-धारा
तब नयन-जलद् बरसाते

(३१)

मत कलियो ! अभिमान करो
दो दिन के ही यौवन का
कुछ पाकर इतरा जाना
क्या ध्येय यही जीवन का ?
मत अलियो ! गुण - गान करो
दो दिन के ही यौवन का
नित स्वाभिमान खोना ही
क्या ध्येय रहा जीवन का ?
ठुकराये जाते नित, पर
गुण - गान वही यौवन का
अपमान कराना ही बस
क्या ध्येय रहा· जीवन का ?

(३२)

कोई पर-उर की क्यों जाने ?
गत-वैभव नीरस कलिका को
गुंजित मधुकर क्यों पहचाने ?

शुचि सरल, सजल, सुरभित, अभिनव
सुमनों को नोच-नोच मधु पी
पंखुड़ियाँ अस्त - व्यस्त होने
पर कीट लगे क्यों पछताने ?

नभ में विकसित अभिलाषा-मय
प्रतिपल नव किसलय से हँसमुख
उन जीर्ण-जीर्ण पर्णों को मन की
विटप लगे क्यों बतलाने ?

(३३)

रे मन ऐसे सुमन चयन कर !
विहग-टोलियों में हिल-मिल हँस
रिमझिम रिमझिम के सप्तक पर
चपला का मनहर नर्तन भी
देखा जिनने नहीं नयन भर

कर्कश कंकड़ की ठोकर से
त्राहि-त्राहि कर कर शूलों से

जीवन की नित व्यथा-कहानी
कहते हैं जो विजन अयन पर

रह रह रह रह पल पल प्रतिपल
सूखे उर में जिनके बस यह
उठती है अभिलाषा केवल
कब सोयेंगे महाशयन पर

(३४)

कहाँ मधुर मधु-पान यहाँ प्रिय !
निर्बल विटपों को उखाड़
नीरव, निर्जन पथ पर पल प्रतिपल
अबला लतिकाओं का करता
तिरस्कार पवमान यहाँ प्रिय !

सरल सुमन-दल नोच-नोच
मकरंद शोष अतिनिंद्य कीट-कुल
अपने गर्हित-तम जीवन पर
करता है अभिमान यहाँ प्रिय !

सदा दूर अति दूर विजन में
सूखे कर्कश डंठल-दल के
दो दोनों पर ही लुटता
रहता खग का मधु-गान यहाँ प्रिय ?

विटपी की शाखाओं पर
निर्मित नीड़ों में पृथक्-पृथक् हो
बैठे कलरव-रत विहगों को
ऊँच-नीच का ज्ञान यहाँ प्रिय !

(३५)

प्रिय, धैर्य धरूँ अब कितने दिन ?
दो दानों का ही लोभ लिये
उड़ रहे व्योम में विहग-वृन्द
गिर रही निरंतर छितुरे पर्णों
पर ही प्रतिपल तरल तुहिन
किसलय, वल्लरियाँ विटपों के
आँखों आगे ही सूख रहीं
जीवन के प्रत्यूषों में भी
हो रहे निरन्तर ताप-मलिन

झंझा से उखड़े पौधों की
पथ में एकाकी ही परवश
अधखिली डोंडियाँ सतत मृत्यु
ही निरख रही हैं दिन गिन-गिन

विटपी की शाखा-शाखा पर
जर्जर, शोषित, तापित, नीरस

गिलहरियाँ घूम रहीं कितनी
ही सदा न जाने कोटर बिन

(३६)

रजनी की झिलमिल झिलमिल
साड़ी के अवगुंठन को
रजनी-पति चुपके चुपके
खोले जब पुलकित-मन हो

जब मुद्रित कुमुद-कलाएँ
उठ जातीं अँगड़ाई ले
जब बार-बार मँडराते
मधुकर गुंजन-वीणा ले

चुपचाप थकित सी लतिका
सुखमयी आश ले मन में
पुलकित हो जब बँध जाती
विटपी के आलिंगन में

जब चकित मृगी सी नीरव
खग-बालाएँ अलबेली
लज्जा से नत-मस्तक हो
देखें विधु की अठखेली

जब शीतल कर-किरणों में
हँस देती प्रिया शशी की
उर-सुमन मसल तब सहसा
आ जाती याद किसी की

(३७)

निकला भ्रम विश्वास
जलद-जाल का तिमिर चीर वे
आये ले मुस्कान

हँसे व्योम के शून्य हृदय में
तारे फिर अनजान
तरु में था चुपचाप पवन
निर्जनता थी अविराम
विहगी के कलरव में करती
थी लतिका विश्राम
मैं धरती में गड़ी जा रही
थी लज्जित चुपचाप
उनने मेरी ओर निहारा
कर यह प्रेमालाप
आंख-मिचौनी खेलेंगे सखि !
आया है मधु-मास
मैंने आँखें मूँदीं अपनी
छिपे कहीं वे मौन
मैंने भी झटपट दृग खोले
देखा परितः मौन
फैली थी नीरवता, केवल
व्रतति हिली झट एक
वहीं छिपे हैं सोच हृदय ने
किये विचार अनेक
मधु-वन के उस नव निकुंज में
रूप-छटा थी घोर
हरे भरे सुरभित वृन्तों पर
लतिका चारों ओर
पर्ण, पर्ण, कण-कण में ढूंढा
फिर भी हुई हताश
दूर जरा ही सूख चले थे
कलि - किसलव अभिराम

सुमन, पराग, सुरभि, लतिकाएँ
विटपी नवल ललाम
नीड़ों में खग-वास नहीं था
मादकता थी मूक
मंथर गति से गई वहाँ भी
लिये निराशा - हूक

घूम रहा था मधु - वन नयनों
के आगे अविराम
सोच रही थी यहाँ कान्त के
छिपने का क्या काम ?

पर, वे शुष्क स्तबक चुनते थे
छाया था उल्लास
निकला भ्रम विश्वास

(३८)

सरिता - शान्त - किनारे
शान्त, मनोहर, विमल इंदु में
अनुरक्ता थी यामा
अलि से हिली मिली थी
कैरव की कलिका अभिरामा

सौरभ में खोया था निर्मल
मंद पवन चल, शीतल
कूलों की दृढ़ बाँहों में था
सरिता का अंतस्तल

उनकी मधुर प्रतीक्षा से
नव आशा उर में धारे
हरी दूब पर बैठी थी मैं
जल में पैर पसारे

जलचर सुधा - विवर्द्धित जल में
करते थे अठखेली
निरख-निरख कैरव की कलिका
लज्जित थी अलबेली

खोया था नव मधुकर रूठी
कलिका की चितवन में
मैं नीरव, नव चकित मृगी सी
रत थी अवलोकन में

मौन उल्लसित मंथर गति से
वे चुपचाप पधारे
भ्रम में भूली देख मुझे, पर
चले गये मन मारे

मिलन - प्रतीक्षा की पीड़ा से
भूली आँख खुली जब
पड़े गमन - पद - चिन्ह दिखाई
पथ पर आँख ढुली तब

हूक उठी मानस में गहरी
भूले दृग पछताये
हत - प्रभ नीरव, शून्य दृगों में
आँसू - कण दो आये

दौड़ पड़ी पागल सी चिन्हों
के पीछे मन मारे
पर, वे मिल न सके फिर, ढूँढ
वन, उपवन, पथ सारे

(३९)

आऊँ, नभ का गीत सुनो तो
सुरभि-पराग-भरे सुमनों से
अब तक आँख-मिचौनी खेली

सतत कुंज में इधर-उधर उड़
कलि से की कितनी रँगरेली ?

कलि-कुंजों में सुमन-पटल पर
दिवस बिताये, निशा बितायी
मधु-ऋतु में आवास रहा, पर
कोकिल-स्वर पहचान न पायी

कितना ढूँढ़ा क्षण-क्षण प्रतिक्षण
पर कुंजों से कब निकले तुम ?
इसका निर्णय कौन करे अब
मैं पगली थी, या पगले तुम ?

जीवन के मधु-क्षण बिखरे हैं
आऊँ, नीरव, मौन चुनो तो

(४०)

वह आया, पर वह मिल न सकी
विद्युत् चमकी उर चीर-चीर
कंठों में फिर घर्घर-घर्घर
नीरव नयनों में आ निकले
उर के शीकर झर-झर झर-झर

कण-कण में हूक लिये गहरी
दो निःश्वासें नीरवता में
निस्सीम गगन की लीन हुईं
डब - डब - डब दृग पथ पर थामे

सहसा उसकी पदचाप सुनी
पर, वे दृग-पुतली हिल न सकी
डंठल रोया, पर वह उसकी
बिखरी कलिका फिर खिल न सकी

(४१)

रुक गया अचानक ही गायन
थी गूँज रही नव-वीणा के
चल तारों पर झंकार मधुर
चित्रित से वे अविचल बैठे
थे पास श्रवण-रत मौन प्रचुर

मैं बेसुध थी निज गायन में
चुपचाप चल पड़े वे उठ कर
जब देख न पायी उन्हें हुई
मूर्च्छित, छूटी वीणा सत्वर

दृग खुलने पर देखा, मस्तक
गोदी में था, सहलाते थे
मुख-मुद्रा थी गंभीर, नयन
नभ में थे, रह - रह गाते थे
"रुक गया अचानक ही गायन"

(४२)

मैं भूल गई वीणा-वादन
हट गई स्वरों से अंगुलियाँ
उस ओर कुतूहल लिये त्वरित
जा लगे नयन सहसा उत्सुक
झट मौन हुए चल तार ललित

हूँ कौन, कहाँ, क्यों मौन, नहीं
थोड़ा सा भी कुछ ज्ञान रहा
स्वर्गीय, अलौकिक, दिव्य तेज
बस गुंजन का ही ध्यान रहा

देदीप्यमान अनुपम प्रकाश
में बिखरे गुंजन के मधु कण
भर-भर उर–प्याले में कर कर

बेसुधपन से चिर आस्वादन
में भूल गई वीणा-वादन

(४३)

चल पड़े दृगों से दृग जल-कण
वह क्षण भर नीरव, मौन रहा, पथ पर पद-चिन्हों को देखा
अम्बर के मेघाडंबर में चमकी विद्युत् की-सी रेखा
प्रतिपल विस्तृत नभ-मंडल में उड़-उड़ पंछी-गण गाते थे
कलिका, मधुकर, संफुल्ल कुसुम, लतिका-विटपी लहराते थे
उर में अगणित जलवाह भिड़े ले करुण दुखद गर्जन-तर्जन
निःश्वासों से चिर एकाकी, पीड़ित मानस के छिन्न-छिन्न व्रण
चल पड़े दृगों से दृग-जल-कण

(४४)

हा, बीत गई यों ही वेला
मलयानिल शुचि चुपचाप बहा स्वप्निल भावों में खोया सा
लहरें चंचल अभिराम उठीं, सरिता में झलक पड़ी आशा
खग मौन हुए, मलयानिल ने चुपचाप किया सौरभ-संचय
अनुकरण किया अलि ने, कलि ने दिखलाया लयमय चल अभिनय
लहरें चंचल अभिराम बढ़ीं नर्तनमय, गतिमय, पीड़ित, पर
यह गूँज गया गायन परितः कूलों ने झट ज्योंही ठेला
हा, बीत गई योंही बेला

(४५)

हृदय चीर कर चपला तम का करती है मन-मोहक-नर्तन
नभ के एकाकी कोने में सुखदायी जलधर का गर्जन
भू नीरव है, विह्वल गद्‌गद्, कण-कण में मारुत उड़ता है
नीरव जल में मोदक, मनहर रिमझिम का बुद्-बुद् उठता है
त्वरित लुढ़क जाता है तरु-पर्णों पर जल-कण गिरता-गिरता
देख, सोच, वहीं रोता है" कितनी जीवन की अस्थिरता ?

(४६)

दुख-झंझा से जब जीवन की नौका डोले डगमग-डगमग
जब स्मृतियों का दुस्तर सागर हो जाये अविरल ही तम-रत
निःश्वासों की पतवार लिये तब एक बार तुम आ जाना !
उड़ चलें साँस की आँधी से कलियों की पंखुड़ियाँ फर-फर
जल उठे अखिल विरहानल से जब उर-वल्लरियाँ धू-धू कर
नीरव नयनों में आँसू बन तब एक बार तुम आ जाना !

★

एकादश सर्ग

★

प्रातः की शीतल वायु रुचिर
भीनी - भीनी सी बहती है
मंथर - मंथर ज्यों कहती है
जीवन-प्रवाह का अन्त नहीं
गति का निस्सीम, अपार अजिर

कलिकाओं के मधु का संचय
वह प्रतिपल करती जाती है
अंचल भरती हो जाती है
विह्वल कर देता कभी - कभी
सौरभ - विनाश का भावी भय

कलि के पत्रों में अलि - गुंजन
नव मधु की चिन्ता में खोया
रजनी में जो थक कर सोया
जब हो जाती है तृप्त तृषा
अंतर् हो आता है उन्मन

वह स्पन्दन या कि तृषा - क्रंदन ?
भर जाता मधु सौरभ से मन
तब थकता, नीरस बनता तन
पंखों की चंचलता जाती
गुंजन क्या मधु-अभाव-बन्धन ?

परिहास लहरियों का तट पर
अल्हड़ बन क्रीड़ा करता है
दुल्हन सी व्रीड़ा भरता है
प्रतिदिन की क्रीड़ा क्या अंकित
रह पाती संसृति के पट पर ?

लहरों पर अस्त - व्यस्त से तृण
अज्ञात दिशा में तिरते हैं
निर्जीव, शून्य से फिरते हैं
चंचल, अबाध गतिमय जल में
जो नीरस, वह क्या कभी मसृण ?

सरिता, सुवायु का सम्मिश्रण
जिससे अंतस्तल गाता है
नर्तन का पार न आता है
संमिलन - हर्ष का चितरंजन
शाश्वत रह पाता क्या वह क्षण ?

चंचल जल का मंजुल कल कल
किस ओर स्वतः ही बढ़ जाता
जल स्वयं जान क्या कुछ पाता ?
गतिशील गमन, या प्रगति-शमन
चल-चल या पल-प्रतिपल छल-छल ?

लहरों पर तैर रहे बुद्-बुद्
जल में अठखेली करते हैं
उल्लास-विलीन निखरते हैं

अज्ञात वेग की वेला में
रख पाता क्या अस्तित्व विरुद्ध ?

सरिता के अंतस्तल-तल में
प्रच्छन्न कौन, क्या है रहस्य ?
यह जान सका है तीर-सस्य ?
उसकी प्रकाश-तम-उद्भूता
प्रतिकृतियाँ क्या सत्या जल में ?

इस सरिता का आदिम उद्गम
जल में बहने वाला पत्ता
जिसकी जल में न कहीं सत्ता
पा सकता है जो विवश महा ?
क्या नहीं कल्पना उसकी भ्रम ?

गंभीर स्तरों के अंतर में
किसने अविराम निवास किया ?
दल-दल में कैसे श्वास लिया ?
क्या पूर रुका, वे नहीं बहे
सरिता-प्रवाह की गति खर में ?

सुमनों के अंतर् से सौरभ
मलयानिल अंचल में चिपती
सूने अनंत में जा छिपती
पंखुड़ियों की नीरसता में
छवि भर पाता क्या अरुणिम नभ ?

नीरस, कृश पर्णों का डंठल
मलयानिल में परवश हिलता
उसको क्या हर्ष कहीं मिलता ?
वह कृश से कृशतर शुष्क बने
क्या है बयार वह दावानल ?

तरुओं का भावाकुल मानस
उद्वेलित होकर छा जाता
शीतल झौंका कितना भाता ?
इस भावाकुलता का सुंदर
करती. क्या मूल्य दिशाएँ दश ?

तरु-शाखाओं का आन्दोलन
छविमय गुंजित नर्तन करता
श्रम के स्वेदों का जग हरता
सबको मिलता उल्लास किन्तु
क्या छिन्न-भिन्न उसका बंधन ?

चल जल-प्रवाह-गति में जल-चर
कर पग विपरीत घुमाते हैं
स्वर-ताल भूल रह जाते हैं
उलझन की गति-विधियाँ सर्जन
या वर्जन की झंझा पल भर ?

अम्बर का झिलमिल ग्रह-मंडल
जल में प्रतिबिंबित होता है
रजतों से तार पिरोता है
सीमित जल के अंतस्तल में
विस्तृत प्रकाश जाता है ढल ?

संशून्य, अदर्शित अम्बर-तल
नीला - नीला ही लगता है
या वह नयनों को ठगता है ?
दो नयन माँप लेते सचमुच
आकर्षण इतना अधिक सरल ?

कल जल पल - प्रतिपल तीरोन्मन
कूलों में वदन छिपाता है

उस ओर दौड़ ही आता है
गति के घातों से दूर गमन
तीरस्थ बने रहना जीवन ?

नभ का कोना कोई रक्तिम
प्राची बतलाया जाता है
या पूर्व, उदय कहलाता है
वह मूल उत्स या प्रगति-स्रोत
किरणों की गति का महा महिम ?

अरुणोदय-बेला की लाली
अंबर-तल में छा जाती है
कहते हैं, ऊषा आती है
वह स्वर्ण-रेख या दिनकर के
मस्तक की कोई लिपि काली ?

रवि-गति की प्रतिपल चंचलता
संसृति में ज्योति लुटाती है
अन्धी जगती मुस्काती है
वह स्वर्ण-हंस हँसता चलता
या ताप-तृषाओं में जलता ?

संध्या-अंचल में अस्तंगत
रवि गतवैभव सा लगता है
या अंधकार कुछ ठगता है ?
वह उसके जीवन का इतिश्री
या जीवन की संगति चित् सत् ?

विहगों के कंठों का कलरव
ऊषा का स्वागत करता है
वन-उपवन का मन भरता है
सपनों का मंजुल चिंतन या
आगत वेला का स्तव अभिनव ?

वृन्तों पर बैठे खग - दम्पति
जग की लीला में तन्मय हैं
आवागमनों से निर्भय हैं
विश्रान्तिकाल या पंखों में
संचित की जाती अभिनव गति ?

नभ के सूने मन का मन्थन
पंछी उड़ उड़ कर करते हैं
अविरल स्वच्छन्द विचरते हैं
अस्तित्व विहीन, अदृश्य वस्तु
का हो सकता कोई ग्रन्थन ?

खग - सम्मेलन से रिक्त विटप
नीरव, नीरस से लगते हैं
नीड़ों में बच्चे जगते हैं
संस्मृति की छाया से क्षण भर
हो सकता दूर कभी आतप ?

अंबर से आ नीचे भू पर
पक्षी-गण दाने चुनते हैं
मिट्टी में चोंचें धुनते हैं
आधार - हीन उड़ना देता
कर क्या न सतत जीवन दूभर ?

नभ के ऊँचे - ऊँचे स्तर पर
चीलों का दल जुड़ता जाता
धीरे - धीरे उड़ता जाता
जग के प्रति उदासीनता अति
तो क्या यह अंतरिक्ष सुस्तर ?

ऊपर की ओर निमग्न नयन
उर में नवीनता भरते हैं
उत्साह अधिक ला धरते हैं

केवल ऊपर की ओर गमन
है सच्चा सर्वांगीण अयन ?

जल में उठ-उठ कर लहर-लहर
वर्तुलाकार मँडराती हैं
जल में ही लय हो जाती हैं
संसृति - उपकरणों के बाहर
जीवन सकता है कभी ठहर ?

बुद्बुद्—अंतर्मन का परिचय
चंचल लहरों में अंतर्हित
झंझा-नर्तन में गूढ़, निहित
अस्थिर प्रवाह में नावों का
हो सकता है सुन्दर संचय ?

ऊषा की आदिम स्वर्ण-किरण
जल अंतस्तल में धँसती है
कंटक-शूलों में फँसती है
विपरीत दिशा में बढ़ते हैं
जीवन के दो असमान चरण ?

किरणों के तारों के कण-कण
गहरे तम में मुस्काते हैं
आलोक कहाँ से लाते हैं ?
जलते रहते अविराम वहाँ
अभिलाषाओं के नीरस तृण ?

दिनकर की नव आकृति वर्तुल
मन के मन को हर लेती है
पलकें विश्राम - चहेती हैं
आसक्ति, शान्ति, द्विमुखी द्वाभा
में जीवन का निर्माण विपुल ?

मीराँ

आलोक शिखा का अवरोहण
नभ से धरती पर छाता है
नीचे - नीचे ही आता है
प्रतिपल जीवन बहता है या
संहासोन्मुख गतिशील चरण ?

भूतल-सीमा के पार क्षितिज
संसृति की कोई रेखा है ?
नयनों ने आगे देखा है ?
कूपान्तर्वासी का क्या कोई
अभिराम वास्तविक ज्ञान गतिज ?

प्राची, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर
संसृति के कोने कहलाते
भूले भटके को बहलाते
अनुमान याकि वस्तुतः सत्य ?
निर्धारित या कि प्रमाणित स्तर ?

क्षण, घटिका, दिवस, मास, वेला
जिनसे होता है बोध यहाँ
वेला का सच्चा शोध यहाँ ?
संसृति-सद्वेला — परिचायक
या स्वतः चिन्तना का मेला ?

वल्लरियाँ संफुल, सजल, हरिताभ, चंचला
विकसित मुकुल विभोर रक्त-नीलाभ, सुधवला
कुंचित व्रतति-प्रतान मसृण, शाद्वल, सोमोपम
पल्लव-मधुर-अधर-दल रागारुण अंतर्-रम

नव कुड्मल-भुजबन्ध-भृंग-सम्बन्ध गीतिमय
परिमल पल पल चंचल, कल वातास प्रीतिमय
शाद्वलता-मृदु-पंख तुहिन-मुक्ता-कण-ग्रन्थित
कलरव-स्निग्ध अधर मुक्तारुण, गुंजित, स्पंदित

मुक्त समुत्थित वृन्त कान्त, सजलान्त, विवर्द्धित
किसलय-चंचल-अंचल-तल-खग-शिशु संस्पर्द्धित
विस्तृत सुरभित अभ्र-श्वास चल मुक्त चतुर्दिक्
नवल-नीलिमा-दृश्य-तान खेचर-कुल स्वर्गित

निर्झर-झर-झर-झर-स्वर नव कलरव संगुम्फित
रेणु-वेणु-स्वन-स्वर्ण-जाल-गत अंबर लुंठित
मुखरित कनक-विहान हास्य-उल्लसित, उमंगित
ऊषा अंतर-प्रान्त शान्त सुख-भ्रान्त, तरंगित

अभिनव आशा, अभिलाषा, विश्वास सुभाषित
संपुट - बद्धा श्रद्धा नर्तित, मुक्त, प्रकाशित
मुक्ति - मुक्त - उत्ताल ताल परितः गत - बंधन
भू, नभ, जल उन्मुक्त, मुक्त तन, मन, स्वन, स्पंदन

किन्तु, आज मानव चिर पीड़ित, दूर न बंधन
आज चतुर्दिक छाया इतस्ततः संक्रन्दन
लता, पुष्प, खग, भृंग सकल स्वाधीन चिरंतन
संसृति का सुन्दरतर वर पर, नर चिर उन्मन

जगती के अंतर्मन में विस्तृत कोलाहल
तिमिर-तिरोहित शान्ति-कान्ति-स्वर्णिल-उदयाचल
धूलि-धूसरित ध्वान्त-भ्रान्त अविराम चतुर्दिक्
कुहा-मथित, श्री-रिक्त, विकल कल शतदल स्वस्तिक

पंथ कंटकाकीर्ण, जीर्ण, संशीर्ण, भुग्न - तम
झुरमुट-गुंफित-जाल-पर्ण-खग-विरत अजंगम
निर्झर-स्वर-गति रुद्ध, बद्ध, पाषाण पिपासित
नव अंकुर म्रियमाण, प्राण गतप्राण, अभासित

खर-भास्वर स्वर-हीन दीन, श्लथ कंठ घर्घरित
नयन-अयन-संशयन, प्रभा निर्लिप्त, जर्जरित
घ्राण-घ्राण गतत्राण, म्लान, संकुचित, अविकसित
मति सम्प्रति क्षति-लीन, कामना त्रस्त, धूसरित

क्षुब्ध, क्रुद्ध, गति-मुग्ध लहरियाँ, पोत भयाकुल
निस्सहाय, निरुपाय, हाय तन्मय जन-संकुल
धार - मार - पतवार - हार, कूपार पार — तन
पट-झंझट, तट विकट, प्रकट परितः जलचर-जन

निर्मल - अविचल - निस्तल - अम्बर - मेघाडंबर
घर्घर - घर्घर घोष, तोष - संतोष - कोष - हर
विद्युत् - रेखा क्षीण, दीन, तम - लीन, हीनतर
भीमाकार - विकार - क्षार - संसार, धार - शर

सूनापन, निर्जन वन - पत्तन, नीरव वैभव
गतोल्लास, निःश्वास - पाश, विश्वास छिन्न-शव
दावानल उज्ज्वल अविरल चल, सबल, अनर्गल
धूम - धूम ज्वाला - माला - जाला, कालांचल

तृण-तरु-लता-प्रतान म्लान आभ्रान्त क्लान्त मन
सरित-हरित-जल गतकलकल, निर्जल निस्तल तन
शुष्क, रुक्ष पाषाण-प्राण, संगान-लहर मृत
तट - जल - पट उद्घटित, प्रकट चट्टान विनिःसृत

उपत्यका - संपतित कुपित पाषाण विश्रृंखल
बालांकुर - उर - प्रान्त शान्त, सन्नष्ट अचंचल
शिला - खंड उद्दंड चंड, दूर्वांचल जर्जर
अधित्यका - ध्वंसावशेष, सुनसान खंडहर

महीयान - पवमान - गान, दिग् दिगंत शंकित
त्रस्त-व्यस्त, परित्रस्त-स्रस्त, संध्वस्त प्रकंपित
अशरण पर्ण विवर्ण, संचरण डगमग - डगमग
लक्ष - लक्ष भव-वृक्ष-कक्ष विच्छिन्न, खिन्न मग

कैसा था युग, स्वर्ण-काल वह आदिम सुरभित ?
स्वर्ण-प्रात में होता होगा कलरव मुखरित
उड़ते होंगे मुक्त व्योम में विहगों के दल
अंतर्मन में बहती होगी सरिता कल - कल

समता का समतल प्रवाह होगा शिव निर्मल
जिसमें सत्यासत्य, अधर्म धर्म, निश्छल छल
एकाकार अनघ अघ, ईर्ष्या स्नेह, सुधा विष
स्वप्न रहे होंगे ये भेद-भाव सब किल्बिष

जीवन शतदल के स्वर्णिम पत्रों सा विकसित
आशा उज्ज्वल मुक्त स्वर्ण - किरणों सी विस्तृत
होते होंगे पावन उर में स्वर्गिक गुंजन
मुक्त सर्वथा मुक्त जगत्-जीवन, जन-जन-मन

तब न प्रकंपित होते होंगे चरण अखंडित
करते होंगे शूल-कंटकों को सम्मर्दित
सर-सरिता उत्तुंग श्रृंग, सुनसान विपथ पर
चरण-प्रगति नाचती रही होगी पथ-मथ कर

तब न झाँकते होंगे दूर निराशा से दृग
लता-विटप, पशु, पुष्प-वनस्पति, पवन-मेघ, खग
हर्षित करते होंगे मानव का अंतस्तल
सहवासी प्राकृतिक मनुज वह कितना निश्छल ?

रो पड़ता होगा वह किसी विहग के दुख पर
मँडराते होंगे अनजान करुण स्वर मुख पर
करते होंगे प्राणों को व्याकुल, चिर उन्मन
पावस के प्रिय मेघ घूमते वन-वन उपवन

होते होंगे म्लान पुष्प-लतिका मुरझा कर
सहवासी की किसी प्रथम अनजान विदा पर
बहती होगी प्रिया–विरह में नयन–त्रिवेणी
व्यथित हुई होगी तब खग-मृग-मधुकर-श्रेणी

करता होगा रुद्ध न कोई प्राणों का स्वर
बन्धन का अंजाल नहीं होगा प्राणों पर
भार नहीं होता होगा तन मन जीवन पर
वरुण, अरुण, भू, सोम, वायु, नभ सम जन-जन पर

आज वासनाओं से ही जीवन आकर्षित
सीमा-हीन मनुज सीमा में बद्ध प्रहर्षित
स्वार्थ-भावना ही अंतस्तल में उद्वेलित
मुक्त चिन्तना के पलकों में ज्योति अदोलित
किल्विष के स्वर्णिल सपनों में ऊषा गीतित
भ्रष्ट-भावना के अंतर् का हास न सीमित
विश्वासों के खंडहरों में तम का क्रन्दन
कलह-द्वेष के सप्त स्वरों में मत्सर स्पन्दन
कहीं मूर्च्छना बनी हुई है ईश्वर-चिन्तन
निर्गुण के सूने प्रदेश में कहीं पर्यटन
भक्ति प्रेम की कहीं अलंकारों में गुंफित
मत-मतान्तरों की काराओं में गति ग्रंथित
कला, कल्पना, कविता, चित्रों में कृत्रिमता
अपना ईर्ष्या-द्वेष-स्वार्थ, अपनी ही ममता
रजत स्वर्ण के मन-मोहक चक्रों में विस्मृत
आत्मा का संगीत सत्य, शिव, सुन्दर मुखरित
आज नहीं रह गई कला में सृजनशीलता
भक्ति-भावना में व्यापकता ब्रह्म-अखिलता
एकांगी रह गई मनुज की चिन्तन-वाणी
पद-दलिता रह गई आज नारी कल्याणी
उड़-उड़ कर नभ को छू डालूँ, चाह रहा नर
एकपक्ष संतुलन-हीन गिरता जाता पर
फिर भी नर की भग्न भावना नहीं हारती
कोटर में निरुपाय बद्ध नारी पुकारती
मूल्य नहीं रह गया आज नारी के स्वर का
ज्ञान छिन्न हो गया उसे निज शक्ति प्रखर का
भग्न हुई उर-वीणा के तारों में क्रंदन
विष-धर की कुंडलियों के पाशों में चन्दन

आज नहीं नारी को हँसने की स्वतंत्रता
उच्च विचार-विमर्शों में भी है न मंत्रता
खेल-कूद नर्तन-गायन, चंचलता सपना
पराधीन है, कोई भी रह गया न अपना

चेरी, बाँदी, आज हुई चरणों की दासी
विधवा, वेश्या, कुलटा, खल माया, कुल-नाशी
आज बनादी गई वासना की वह गुड़िया
काम-वासना उत्तेजित करने की पुड़िया

विहँसो, विहँसो, ज्योति-हासिनी !
पत्नी, जननी, दुहिते, भगिनी
चिर संपीड़ित हे उदासिनी !

तम का विस्तृत कलुषित अंचल
प्राणों पर छा रहा अंचचल
अंधकारमय अंबर जल थल
प्रभा-रश्मि भर लो विलासिनी !

'इति, अथ, तर तम, पथ पर भी तम
आज गया तम प्राणों में रम
चिन्तन में कृष्णांचल दुर्गम
ज्योति बिखेरो हे प्रकाशिनी !
विहँसो, विहँसो ज्योतिहासिनी !

प्राणों का स्वर चिर दीपित हो
चिंतन का शतदल विकसित हो
जीवन का न पन्थ कलुषित हो
विभासिनी, ऐश्वर्य-राशिनी !

हो अंतर में स्वर्णिल गुंजन
ध्वान्त क्लान्त हो अमृत मंथन
शान्त करो अग जग का क्रंदन
शिव-सुन्दर-सत्यं-सुभाषिनी !

मेरे तो गिरधर गोपाल, न कोई दूजा
मेरे वे आराध्य, करूँगी उनकी पूजा
चाहे बन्धु, सगे, परिजन से होऊँ वंचित
मिथ्या ममता किंचित् भी न करूँगी संचित

आती जाती हूँ पल प्रतिपल मैं अविरल ही पास तुम्हारे
कभी-कभी जब मैं करती हूँ एकाकी एकान्त-चिन्तना
ऊँची उड़ती सी लगती हूँ, ज्ञात धरा होती अकिंचना
ज्यों अम्बर-तल में पतंग ऊँचा ही ऊँचा उड़ जाता है
नीचे आने की इच्छाएँ लुप्त, नहीं वह मुड़ पाता है

उस क्षण में मधु-चयन-निरत नव मधुकर की संफुल्ल बेलियाँ
निर्झर के रमणीय पुलिन, उपवन की मंजुल कुसुम-केलियाँ
होतीं जग की अखिल वस्तुएँ ये प्रतीत नीरस, नगण्य सी
अधिक कहूँ क्या, चहल-पहल यह दिखलाई पड़ती अरण्य सी

यद्यपि त्रिविध समीर—हास में खो देती हूँ कभी चेतना
अस्त-व्यस्त मैं हो जाती हूँ, पर फिर भी किंचित् न वेदना
पथ पर कितने ही चरणों के आवागमन-चिन्ह हैं अंकित
मैं संशय में पड़ जाती हूँ, कभी-कभी हो उठती शंकित
फिर भी मेरी प्रगति न रुकती, मेरा पथ गंतव्य सुविस्तृत
ऋत अमृत की लिये पिपासा वीणा हो उठती है झंकृत
शून्य बालुका की लघु कणिका उड़ती तेरे एक सहारे
आती जाती हूँ पल प्रतिपल मैं अविरल ही पास तुम्हारे

मीराँ के चिन्तन में थी स्थिरता अचपलता
दिव्य भावना, सौम्य कामना, शिव निश्छलता
उल्लासों पर तैर रहा था भावाकुल मन
तंत्री के चंचल तारों पर गुंजित गुंजन

पंख—हीन कैसे उड़ पाये ?

क्षण—भंगुर तन, नश्वर जन है
अमर—लोक के पास न मन है

सोच-सोच पंछी पछताये
पंख-हीन कैसे उड़ पाये ?

दसों दिशाएँ अंधकार-मय
झंझा में जग के कण-कण क्षय
पता न, दीपक कब बुझ जाये ?
पंख-हीन कैसे उड़ पाये ?

तृप्त न हो पाती अभिलाषा
बुद्-बुद् सी मिट जाती आशा
जीवन निर्झर सा झर जाये
पंख-हीन कैसे उड़ पाये ?

जिन्हें समझते हैं हम अपने
शेष कहाँ रह पाते सपने ?
कौन कहाँ से आये, जाये ?
पंख-हीन कैसे उड़ पाये ?

जन्म-मृत्यु का छोर नहीं है
जग का कोई चोर कहीं है
खोज लिया, पर सफल न आये
पंख-हीन कैसे उड़ पाये ?

कवि रहस्य की ओर प्रवाहित
चित्रकार सुन्दरता-प्लावित
गायक गा-गा कर रह जाये
पंख-हीन कैसे उड़ पाये ?

★

द्वादश सर्ग

★

भावों की सरिता में डूबी
ले शान्त हृदय में सुख नवीन
वह पथ पर बढ़ती जाती थी
धीरे-धीरे सुध – बुध - विहीन

झंकृत, चल तारों पर नर्तन
करतीं थीं अंगुलियाँ प्रवीण
गायन - लय में भूली, खोयी
थी प्रतिपल वह वीणा - धुरीण

नभ ओर लगे थे दृग नीरव
यह कौन कहे, क्या रहे देख ?
पर उर में उठत भावों का
अंकित था उनमें स्पष्ट लेख

पढ़-पढ़ कर था नभ शून्य, मौन
गायिका-दृगों की भाँति शान्त
टिमटिमा रहे दो दृग तारे
ज्योतिर्विहीन, थे विवश, भ्रान्त

द्वादश सर्ग

झिलमिला रही थी कसक मूक
छाया था आगे अन्धकार
दो नयन इधर, दो नयन उधर
चारों धूमिल, चिन्तित अपार

गा रहा शून्य, सुन रहा शून्य
दोनों बेसुध चेतना - हीन
संगीत शून्य में से उठ कर
हो रहा शून्य में था विलीन

परित: व्यापी निर्मल, चंचल
संगीत - लहरियों में प्रवाह
जिनमें डूबे, थे तैर रहे
उठते मिटते बुद्-बुद् अथाह

जड़, शून्य काष्ठ की वीणा में
अंतर्हित अमृत मधुर नाद
था शून्य, अचेतन तारों में
भूले अतीत की मधुर याद

ऊँचे, नीचे सुन्दर टीले
थी बिछी स्वर्ण सी पीत धूल
कुछ भी जिसका था दीख रहा
उस पार क्षितिज तक नहीं कूल

पीछे के पथ पर थी अंकित
मंथर चरणों की सुघड़ छाप
था झलक रहा अभिराम पृथक्
जिनका अपना अस्तित्व आप

करती थी मधु ध्वनि का प्रसार
मंथर-गति, गायन निरत वात
चरणों में सतत बिखेर रही
थी इधर उधर से शुष्क पात

यद्यपि वे थे अति शुष्क पात
पर, उनमें था शुचि भरा स्नेह
था पद - चिन्हों पर लोट रहा
वह श्रद्धा से बेसुध अदेह

मंथर-मंथर लय में भूले
रज-कण करते थे नृत्य मूक
संभव है, उनके उर में भी
कोई अतीत की रही हूक

थे यत्र तत्र सुध-बुध-विहीन
गायक-वीणा के आस-पास
नटवर-वंशी-रव पर जैसे
गोपियाँ कर रहीं विकल रास

सब धूलि-कणों को शुष्क शून्य
मानते, समझते निर्विवाद
पर मिथ्या यह, आता उनको
संगीत-नृत्य में सदा स्वाद

गायक-वीणा के करुण गीत
टीले सुनते थे बने मौन
उनकी सुधि में आ बैठा था
जाने नीरव अज्ञात कौन ?

सिर धुनते थे सब इधर-उधर
दूरस्थ विटप गायन-विभोर
आकुल, अशान्त, नीरव रज में
मिल रहा निरंतर नव्य बोर

बह रहा निरंतर था अपार
अज्ञात दिशा में स्मरण-स्रोत
उसका वह कल-कल प्रतिपल था
कर रहा व्यथा को ओतप्रोत

द्वादश सर्ग

गायक-वीणा स्वर-शैली पर
बिषधर की ज्यों थे रहे टील
उन्मत्त, मौन, नीरव थे सब
क्या पीपल, क्या वट, क्या करील ?

स्थावर के उर में भी ला दे
जो सतत व्यथा, करुणा, विषाद
वह धन्य, धन्य, सौ बार धन्य
गायक-वीणा का मधुर नाद

सब छोड़ रहे थे विहग नीड़
अपने मन में ले विविध भाव
उनके गायक पर गड़े नयन
प्रकटित करते थे लय-प्रभाव

गायक की ही चर्चा केवल
उनके मुख-मुख पर थी अशेष
वे भूल रहे थे उड्डायन
कुंकुम नभ तकना निर्निमेष

कितने ही नूतन विहगों को
कितनी ही त्रुटियाँ भूल, चूक
अपने गीतों में ज्ञात हुईं
लय में खोकर वे बने मूक

गुन गुना रहे थे गायन को
कितने ही खग लय में विभोर
थी धूम-धाम, नूतन हलचल
गुंजित था वन का ओर छोर

थे अलस नयन, तज सुखद शयन
विस्मृत से रवि भी पड़े जाग
नभ ने अपने दृग मूँद लिये
ऐसी थी प्रिय वह मधुर राग

स्वर्णाचल से क्षणमात्र झाँक
गायक पर दीं किरणें बिखेर
सबने विस्मय से रवि देखा
सोचा यह कौन अपर कुबेर ?

रवि में सब की थी श्रद्धा, पर
आश्चर्य हुआ यह और देख
गायक ने उन पर नहीं ध्यान
कुछ दिया, नहीं उल्लास-रेख

वह पूर्वभाँति, था उसका बस
अपने गायन में ध्यान एक
रज में बिखरीं थीं इधर उधर
दिनकर की स्वर्ण-किरण अनेक

पीछे - पीछे चलते जाते
थे हरिण-दम्पती मुग्ध, मौन
वे भूल रहे थे चौकड़ियाँ
कुछ ज्ञात न था, हम कहाँ, कौन ?

भीतर हृत्तंत्री गूँज रही
पर बाहर तंत्री और गीत
फिर भी अनुगामी था बाहर
भीतर का, यह विपरीत रीत

अपने प्रति अवहेलना निरख
गायक पर रवि को हुआ क्रोध
वे भूल गये मानापमान
सद्भाव, शान्ति, व्यवहार-बोध

स्वर्णाचल से झाँकना छोड़
चढ़ आये सिर पर अंशुमान
वादन-तन्मयता भंग हुई
टूटा उसका वह गान, ध्यान

ज्यों ही ऊपर देखा तो रवि
जलते थे भीषण लिये ताप
वह अपने ऊपर खीझ उठी
मीराँ पछताई स्वयं आप

थे कंठ शुष्क, लग रही प्यास
था स्वेद-स्राव, संतप्त गात
था कान्त मनोरम स्वर्ण काल
खो चुका शून्य में स्वप्नमात्र

गुंजन में खोई थी वीणा
पर अब उसमें गुंजन-विलीन
अग - जग - चित्ताकर्षिका स्वयं
थी तृष्ण से सुध-बुध-विहीन

उसके घूमे लोचन अपलक
जल की आशा में सभी ओर
लौटे निराश, नीरव ही पर
जल पा न सके वे किसी ठौर

हाँ, पड़े दिखाई वृक्ष सघन
टीलों से कुछ ही दूर पास
हैं वहाँ गाँव कोई अवश्य
यह सोच शान्ति, कुछ हुई आश

मन की विह्वलता और बढ़ी
डग बढ़े, धूप थी दुर्निवार
ऊपर नीचे अंतर्ज्वाला
पछतावा था, मन में विचार,

गायन, वादन में निष्फल ही
मैंने खोया निज स्वर्ण-काल
मन के पीड़ित प्रांगण में, पर
फैला सहसा यह तर्क-जाल

पथ-चिन्ता विस्मृत करते हो
गायन, वादन का लिया ध्यान
पर भूल गई, क्षण बीत गये
निस्पंद वायु, आतप-स्वराज

गायक जो, उसमें भावुकता
का होना, है यह निर्विवाद
तिस पर भी वह गायक, जिसके
जीवन में केवल हो विषाद

गहरी भावुकता होगी ही
वह इसीलिये बह गई दूर
पर नाच-नाच कर आखिर तो
चरणों पर रो देता मयूर

आगे आई तो दीख पड़ा
विस्तृत वट नीचे एक कूप
छाया में ठंडक सोती थी
हारी थी जिससे कड़ी धूप

चंचलता तीखे नयनों में
कण-कण में यौवन का उफान
कटि - गति में नर्तन, परिवर्तन
मधु लिये उरोजों में वितान

वस्त्रालंकृत, भूषण - झंकृत
मुख-घन में विद्युत्-सी रेखा
जल भरती अभिनव युवती को
हत-प्रभ नीरव, उसने देखा

यह भी देखा, कोई राही
संतापित, प्यासा है अथाह
पानी पीने के लिये कूप
के पास खड़ा है छोड़ राह

कह रहा पथिक था युवती से
विनती से, मृदु स्वर में विनीत
अति प्यासा हूँ, जल पीऊँगा
यह शीत - स्थान सचमुच पुनीत

पग धरने को भी नहीं स्थान
सर्वत्र बरस है रही आग
जल पीने की अभिलाष लिये
जल घट को देखा सानुराग

तुम कहते हो सो ठीक पथिक ?
युवती बोली, वह साभिमान
तुम नीचे जन, काले, कुरूप
मैं नहीं करूँगी नीर - दान

मानस में धक्का लगा एक
खोया चिन्तन, खो गये तार
आवरण हटा जिसके नीचे
प्यासे की तृष्णा का उभार

बुझ गया एक ही झोंके से
चिंतन का दीपित दिव्य दीप
उत्ताल तरंगों पर थी वह
कोई भी था न कहीं प्रतीप

स्थिर रह न सकी, सपना टूटा
हो गया स्वयं वास्तविक ज्ञान
मिल गया लक्ष्य जैसे पथ पर
बढ़ गये चरण चंचल अजान

वट की शाखा पर छाया में
थे देख रहे बैठे मयूर
मानो उनके दृग कहते थे
युवती, मत इतनी बनो क्रूर !

मीराँ

कीचड़ से उठ कर द्रुतगति से
उस राही पर ग्रामीण श्वान
कब झपटा, भौंका, शान्त हुआ
उसको कुछ भी था नहीं ध्यान

उस वट की शीतल छाया में
बैठे, लेटे ग्रामीण ढोर
चित्रित से मौन बने अपलक
बस देख रहे थे उसी ओर

डग बढ़े नहीं, चक्कर आया
वह नीचा जन, काला, कुरूप
मूर्च्छित होकर गिर पड़ा वहीं
सचमुच भीषण थी ज्येष्ठ - धूप

अज्ञात पास की बदली में
क्षण भर रवि भी जा छुपे भाग
चिर तप्त शून्य अंबर की भी
क्षणमात्र ढकी चिर नित्य आग

पर, उस सूनी मीराँ के थी
सूने मानस में मूक दाह
नभ सी विस्तृत, गिरि सी महान्
प्लावन के सागर सी अथाह

क्या नहीं मनुज ये नीचे जन
सौन्दर्य - हीन, काले कुरूप ?
सूनी मीराँ थी, सूनापन
सूने - सूने वट और कूप

दृग खुलने पर देखा उसने
बैठे हैं चारों ओर लोग
चिंतित, अशान्त, जैसे अपने
प्रियजन का होता हो वियोग

अज्ञात किसी के आश्रय में
शय्या पर वह है रहा लेट
उस वट की शीतल छाया में
बोला, वह शक्ति जरा समेट

कैसे आ गया ? कहाँ हूँ मैं ?
क्यों एकत्रित यह जन-समूह ?
क्यों पवन व्यजन से करते हैं ?
उर में प्रश्नों का चक्र-व्यूह

मैं नहीं जानती, कौन, कहाँ
जाते थे तुम, क्या नाम, धाम ?
केवल इतना ही ज्ञात मुझे
दोपहरी थी, था कड़ा घाम

मैं दूर इधर ही आती थी
जल रही चिता सी तप्त धूल
तुम प्यासे थे, जल मिला नहीं
जीवन का मुरझा गया फूल

मैं दौड़ी यहाँ उठा लायी
उपचार किया श्रद्धानुसार
तुम ठीक हो गये, हर्ष मुझे
अब चढ़ न सकेगा पाप-भार

उस मेरे प्रभु गिरधर नागर
ने रख ली सबकी आज लाज
कह कर ऊपर संकेत किया
मुख पर संतोष रहा विराज

निःश्वास लिया, फिर बोला वह
मरने की थी बस एक चाह
पूरी न हुई, अच्छा न किया
फिर जीवन दे कर मुझे आह !

मीराँ

पीड़ाएँ करवट लेती थीं
नभ तक फैली थी लपट लोल
हो रहा सभी कुछ था स्वाहा
स्मृतियाँ ही केवल रही डोल

नीरवता करते हुए भंग
बोली उन्मन मीराँ उदार
तुम भूल रहे हो व्यथित जीव
वाणी में पूरित था दुलार

सुख नहीं धरा है मरने में
यह जीवन भी है सत्य एक
है युद्ध महा जीवन सारा
दुख बाधाएँ आतीं अनेक

दुख बाधाओं से घबड़ा कर
तुम मरने को कटिबद्ध आज
पर, जरा शान्ति से सोचो तो
है मूल सत्य, या सत्य व्याज ?

निज स्वस्थ क्रोड-शिशु को तज जो
चाहा करते उदरस्थ बाल
वे पागल हैं केवल, उनका
हैं अंधकार से भरा भाल

जीवन से विमुख भागना ही
तो मृत्यु, नरक, बस यही पाप
जो यहाँ किया करते क्रंदन
वे आगे भी करते विलाप

दुख ही दुख केवल नहीं यहाँ
सुख भी है दुख के ही समान
यदि एक अब्धि सा विस्तृत तो
दूसरा हिमाचल सा महान्

द्वादश सर्ग

सुख-दुख का सम्मिश्रण-जीवन
सुख का प्रभात, दुख का विराम
छाया प्रकाश प्राकृतिक सत्य
जो सत्य, वही है शिव, ललाम

अविराम सत्य का ग्रहण धर्म
सत् से बढ़ कर कुछ नहीं कार्य
नभ फटे, धँसे धरती चाहे
पर, सत्य नहीं छोड़ते आर्य

अपने सुख-दुख में लीन एक,
तुम को जग का कुछ नहीं ध्यान
क्या कभी जरा सोचा यह भी
प्राणी असंख्य पीड़ित महान्

दुख देख करें उत्सर्ग प्राण
क्या जीवन का बस यही ध्येय ?
पतझड़ का पत्र-हीन तरु क्या
समझा करता निज प्राण हेय ?

दुख में नीरसता स्वाभाविक
पर प्राणी एक निमित्त मात्र
वह स्वयं नहीं करता, केवल
साधन है, उसका नहीं गात्र

उस प्रभु को खोजो अग जग में !
जिसने यह ललित दिया शरीर
अमृत, प्रकाश को प्राप्त करो !
जग को भी बाँटो तिमिर चीर

सुख ही सुख मुझको मिले सदा
तुमने सोचा यदि स्वयं आप
जगती के शुद्ध सत्य से हट
तम में खोये, कर लिया पाप

सुख, दुख जितना हो, ग्रहण करो
गाओ गिरधर के सतत गान !
जो होना है, वह होगा ही
नागर का ऐसा ही विधान

साधन ठहरे हम तो, अपने
यदि मरना जीना नहीं हाथ
तो क्यों रोयें ? क्यों हों निराश ?
क्यों रहें न प्रभु के साथ-साथ ?

जड़ या चेतन संकेत बिना
प्रभु के, तज सकते नहीं प्राण
उसकी इच्छा के बिना पर्ण
भी हिले नहीं, पाये न त्राण

दुख पाते इसका हेतु एक
मानस में निर्मल नहीं त्याग
अपने ही गायन में उलझे
सुनते न सत्य का कभी राग

यदि निज सुख दुख से ऊपर उठ
जीवन पर कभी करें विचार
तो नाच उठेगा कण - कण में
क्षण - क्षण - परिवर्तित जगत्-सार

दुख ही उन्नति का मूल स्रोत
दुख में क्यों साहस रहे भूल ?
हँसते, जग को सौरभ देते
काँटों में ही तो सदा फूल ?

पथ पर कंटक आते ही हैं
तम में ही जलते सदा दीप
दिन-रात निरन्तर भटक - भटक
पाती है मुक्ता कभी सीप

जीवन है शुचि सरिता बहती

सरिता का ध्येय गमन गतिमय
उत्थान पतन में सम अभिनय
अभिराम, सरल, विस्तृत उर में
लहरें अगणित उठती रहती
जीवन है शुचि सरिता बहती

पथ कर देती ऊबड़-खाबड़
कर्कश चट्टानें पथ में पड़
स्वाधीन, विमल, पंकिल उर में
फिर भी नव तान छिड़ी रहती
जीवन है शुचि सरिता बहती

पल प्रतिपल ठोकर पर ठोकर
खाती गर्तों में पड़-पड़ कर
कल-कल से अग-जग को फिर भी
भरती सब कुछ सहती - सहती
जीवन है शुचि सरिता बहती

दुखमयी नहीं, आनंदमयी
है सृष्टि, नहीं सुख बिना क्लेश
मीराँ ने देखा दृष्टि डाल
नभ ताक रहा वह निर्निमेष

मरना ही है तो यों न मरो !
तुम तजो जगत् के लिये प्राण !
जिससे यह जीवन सफल रहे
युग-युग तक फैले कीर्ति-घ्राण

भावों में था उत्थान-पतन
सब बातें सुनते रहे मूक
सब नीरव, थे खोये - खोये
मानस से दूर हुई न हूक

मीराँ

सबके मानस में विस्मय था
गड़ रहे उसी पर सभी नेत्र
नीरवता ने सबके उर में
करुणा का था कर दिया क्षेत्र

करुणालय उर के वरुणालय
में लहरी उठती थी उत्सुक थे
परिचय पाने को उत्सुक थे
चिर अपलक दृग नीरव नितान्त

अपरिचित एक उनमें से ही
बोला कोई पोंछते स्वेद
जिज्ञासा है, तुम कहो शुभे!
परिचय क्या है? क्या कथा-भेद?

वक्ता पर उसके दृग घूमे
वह शुष्क-कंठ, वह शुष्क-प्राण
कुछ हुई बोलने को उद्यत
अति विवश, क्रौञ्च ज्यों विद्ध-बाण

निःश्वास साथ निकली वाणी
अपनेपन का भी था न बोध
भावुकता फैली व्यथा-लीन
नीरवता ने न किया विरोध

बुद्-बुद् का कैसा परिचय?
जग के अनन्त निर्झर में
जिन अभिनव चल लहरों ने
अति धूम मचायी प्रतिपल
नर्तन कर कोने - कोने

अविरल कर्कश चट्टानें
कितनी ही पथ में आईं
क्षणभर कुछ किन्तु जरा भी
जिनको वे रोक न पाईं

वे लहरें आज कहाँ हैं
कह सकता है क्या कोई ?
वह नर्तन आज कहाँ है
बतला सकता क्या कोई

फिर मैं तो क्षण भर नीरव
कुछ मौन करूँगी अभिनय
बुद्बुद् का कैसा परिचय ?

उत्सुकता कुछ कम हो न सकी
परिचय में था गंभीर ऊह
आकर्षित अति उस ओर हुआ
जिससे विस्मित वह जन-समूह

उनमें से कोई यों बोला
यह परिचय तो सबका समान
सब ही जग-निर्झर के बुद्बुद्
सब क्षण-भंगुर, सब नाशमान

दार्शनिक नहीं, वास्तविक बनो
छोड़ो यह अपना ब्रह्म-ज्ञान
क्यों देर कर रही व्यर्थ बहिन !
वाकी फिर वीणा गान-तान

खिल खिला पड़ा अपरिचित पुरुष
वह यों कह, सब हँस पड़े लोग
सबका मन हलका, दूर हुआ
नीरवता का अति शून्य रोग

पर, वह कुछ भी हँस सकी नहीं
बन गई और भी गहन, शान्त
बोली वह, भारी थी वाणी
नीरव तन मन, दृग शून्य, क्लान्त,

मीराँ

परिचय हो तो परिचय दूँ मैं
असहाय दीन, मैं निराधार
मा, बाप, ससुर, पति, स्वजनों का
मैं पा न सकी जी भर दुलार

धन धान्य-स्थान पर यह लकड़ी
वीणा कह दो या इसे बाँस
जंगल में मेरा खेत नहीं
कोई न ग्राम में है निवास

कहने को सब 'मीराँ' कहते
"मीराँ मेड़तणी" पूर्ण नाम
बस रहे दृगों में नन्दलाल
उनके चरणों में ही विराम

कह कर वह नम्र सी मौन हुई
साँवलिये की दुलहिन अनूप
चिंतन था ग्राम्यजनों का यह
कितना सच्चा वास्तविक रूप ?

नगरों में कितना कोलाहल ?
रह गया वहाँ तो महा स्वार्थ
मिथ्या गुण-गान श्रवण कर कर
सब होते रहते हैं कृतार्थ

कृत्रिमता में बस गया ध्यान
कृत्रिम मन, कृत्रिम खान-पान
कृत्रिम चिंतन, संगीत, तान
कृत्रिमता से मृतप्राय प्राण

पावन ग्रामों में भी अपना
फैलाया ईर्ष्या – द्वेष – जाल
ऊँचे-नीचे का भेद-भाव
इनके चिंतन में दिया डाल

द्वादश सर्ग

निर्जन की नीरवता मुखरित
सब ही विह्वल गद्गद् विशाल
सुन रहे भावना में बह कर
मीराँ की गिरधर-गीत-माल

दृग-कोरों से झर-झर चंचल
गिरता थी रज-तल में अशान्त
दृग-सीपी खाली होती थी
बिखरी थी मुक्ता सजल, कान्त

ब्राह्मण सभी ही करते थे
अपने पर पश्चात्ताप आप
वे सोच रहे थे यों मन में
यह भेद-भाव है महापाप

सब जन के उल्लासों से ही
होता है हर्षित सुखी ग्राम
नीचे-ऊँचे का भेद व्यर्थ
अपना-अपना सब करें काम

गुण की ही पूजा आवश्यक
जिसमें ज्यादा गुण, वह प्रधान
खोया रहता रज में हाटक
षट्पद के उर में मधुर गान

यह शुद्ध प्राकृतिक सत्य, पंक
में करते हैं पंकज निवास
कौशेय कृमिज, काष्ठज पावक
गुण के कारण पाते विकास

मीराँ की जय, मीराँ की जय
नभ-चुंबन करता था निनाद
मीराँ हर्षित सी चली गई
हो गया दूर सबका विषाद

एकत्रित जन सब चले गये
रजनी आई, दिन गया बीत
सब भूल गये थे बातों को
पर, पन्थी को थी वही रीत

वह सोच रहा था जीवन पर
आँखों के आगे था अतीत
अविराम निराशा मानस के
मधु-स्वप्नों को थी रही जीत

जितना तम नभ में फैला था
उतना ही अन्तर् में अपार
तम में तारों की ज्यों उर में
स्मृतियाँ जलती थीं दुर्निवार

जग खोया था मधु निद्रा में
उर में खोई थी मधुर आस
उसकी साँसों में दुख, पीड़ा
जगती की साँसों में विलास

उसकी साँसों में और निशा
की साँसों में बस एक तान
वह भी नीरव, वह भी नीरव
जग को इसका था नहीं ध्यान

यह नव युवती, 'रे' वह मीराँ
दोनों नारी, दोनों समान
पर दोनों में कितना अंतर ?
दोनों का अपना पृथक् ध्यान

यह भेद-भाव में मग्न इसे
पामर, कुरूप का एक ध्यान
वह करुणा की प्रतिमा, जग के
दुख सुख की उर में लिये तान

पर, यह तो मेरी व्याख्या है
यह तो मेरा ही दृष्टि-कोण
मैं अपने सुख-दुख के कारण
कर रहा किसी को मुख्य, गौण

मैं बुरी समझता इसीलिए
मुझ को कर सकी न नीर-दान
उसको अच्छा, पर यह तो है
संकीर्ण बुद्धि का व्यर्थ-ज्ञान

मानव अपूर्ण हैं, उसमें तो
त्रुटियों का होना सत्य, ठीक
मुझमें भी कितनी ही त्रुटियाँ
मानव त्रुटियों का ही प्रतीक

पर, वह सचमुच कुत्सित ही है
जिसने न तृषित को दिया नीर
त्रुटियाँ न, वहाँ तो अन्धकार
अभिमान-भरा, मिथ्या अधीर

वह मीराँ मानव नहीं, देव
जिसने पीड़ित से किया प्यार
कितनी उदार उसकी वाणी !
"अब चढ़ न सकेगा पाप-भार"

उसने मरते को जीवन दे
यों दिखलाया कर्तव्य-कूल
"हँसते, जग को सौरभ देते
काँटों में हो तो सदा फूल"

उपयुक्त स्नेह सत्कार और
सेवा उसकी कितनी महान् ?
अभिमान नहीं उस पर भी कुछ
स्वजनों जैसी ही बात, ध्यान

हैं संस्थितियों का दास मनुज
सचमुच स्थितियाँ ही हैं महान्
स्थितियों की धाराओं में ही
बहते रहते हैं सब समान

वह युवती जो कुछ कहती थी
पर वह भी तो है सत्य बात
पामर, नीचा, हूँ शूद्र, म्लेच्छ
मैं सचमुच ही अति-कृष्ण-गात

वह आगे कर न सका चिंतन
दुख-व्यथित हृदय में जली आग
ज्वालाओं में पड़ धूम बना
आशाओं का अवशिष्ट भाग

भीगी पलकें नभ ओर उठीं
फैला था जग पर तिमिर घोर
सब की साँसों में छूम छनन्
सब ही थे निद्रा में विभोर

पर वह एकाकी जाग रहा
था अपने से ही उदासीन
प्लावन की क्षुब्ध तरंगों पर
सुध-बुध-विहीन ज्यों विवश मीन

वह उठा, चल पड़ा, सत्य लिये
मीराँ सा सेवा-व्रत महान्
अपना सुख-दुख रह गया गौण
जगती के दुख का किये ध्यान

वह युवती भी चिन्ता-नत थी
अपने ऊपर था उसे खेद
नयनों आगे वट और कूप
था व्यथित पथिक अति लिये स्वेद

दोपहरी की वेला, माँगा
जल, मैं बोली पर साभिमान
नीचे, कुरूप को कभी नहीं
दूँगी जाओ ! मैं नीर-दान

वे शब्द हृदय में चुभते थे
मीराँ, आँखों में रहा डोल
उसकी वाणी, चिंतन, सेवा
तम के कपाट सब रहे खोल

वह आत्म-लीन थी पर, उसमें
जग भर का चित्रित था स्वरूप
मीराँ के व्रत की आभा में
देदीप्यमान थी वह अनूप

★

त्रयोदश सर्ग

★

आशा का विस्तृत है दुकूल
जिसके अंचल में हरा-भरा रहता जीवन का विकच फूल
आशा रवि का सा कनक-सूत्र जिसमें ग्रंथित क्षण ज्यों प्रवाल
जीवन के कण-कण में अविकल भरते नूतन उल्लास-माल
मुस्कान दिव्य, जो वारिधि की चंचल फेनोज्ज्वल सी तरंग
जिसको अंतर् में लिये-लिये उड़ता रहता है मत्त भृंग
आशा जीवन का मुख्य मूल

कर आशा का आवरण छिन्न
जब प्रबल निराशा मँडराती अविरल ले अपनी दशा भिन्न
तब शत-शत सर्पों के से फन जीवन पर करते हैं प्रहार
चारों कोनों से जग पड़ते सूक्ष्मातिसूक्ष्मतम भी विकार
चिन्ताएँ अंचल फैलातीं जैसे रजनी में अन्धकार
लहरों में डगमग हो उठती जीवन की नौका निराधार
जीवन हो जाता खिन्न, विलन्न

मिल पाता कोई नहीं कूल
झोंकों में यों उठती, गिरती झंझाओं में ज्यों सूक्ष्म तूल
यों इधर-उधर से उधर-इधर हो-हो उठती है महा भ्रान्त
लहरों के तीव्र थपेड़ों से जीवन-नौका जब महा श्रान्त
तब ध्रुव तारे को ज्यों आशा करती जीवन का पथ प्रशस्त
पवमान, तिमिर आते जाते पर वह होती तब भी न अस्त
तट पा जाती नौ भूल-भूल
चिन्ता जीवन का है न ध्येय
चिन्तना-हीन जीवन कहीं न, जीवन में चिन्ता भी न हेय
इतनी ही चिन्ता आवश्यक जो जीवन को दे गति अनन्त
ऐसा न उचित जिससे सुन्दर जीवन केवल रह जाय वृन्त
आशा भी और निराशा भी, पर दोनों में आशा महान्
प्रतिपल आशा का स्वर्ण-हंस जीवन में भरता है उड़ान
आशा के ही गुण-गान गेय

आशा है किरणों का वितान
जिस ओर फूट पड़ती स्वर्णिम हो जाता त्वरित वहाँ विहान
पल-पल प्रतिपल विहगों के दल हो उठते कलरव में विलीन
जल-राशि-लहरियों में चंचल क्रीडा कर उठती मंजु मीन
मधु ही मधु का चुम्बन चलता गायन गा उठते चंचरीक
पर, प्रखर निराशा की रेखा, जिसकी गति का मंगल न लीक
नैराश्य अमा का तिमिर म्लान

पतझड़ का आता म्लान काल
चल शाखाएँ मुरझा जातीं, पीला पड़ जाता पर्ण-जाल
डंठल ही बन कर रह जाता विटपी का आच्छादित शरीर
हर लेता कोई हरा-भरा, सुन्दर, मंजुल, अभिराम चीर
चुपचाप शून्य में खो जाता विटपी का वह वैभव सुखान्त
फिर भी आशा-प्लावित अंतर्, विश्वास-प्रपूरित हृदय प्राप्त
आशा की छिन्न नहीं मृणाल

गिर पड़ते पत्ते टूट - टूट
अभिराम सरस जीवन उनका अंधड़ मुस्काता लूट-लूट
कर उठते वे मर्मर-मर्मर चरणों के नीचे शुष्क-प्राण
कंटक-शूलों में जा फँसते जीवन-आशा में रुष्क-प्राण
वे वृन्त-पतित, वे शूल-ग्रथित, पर फिर भी कब अस्तित्व-ह्रास ?
डगमग-डगमग नभ-निराधार, इस पर भी आशा का प्रकाश
आशा अमृत को मधुर घूँट
हो आता शाखा में विहान
अंकुर में अंकुर निकल-निकल तरु होता वैसा ही महान
गायन गाते विहगी-विहंग, नीडों में अठखेली अयाम
पल्लव-अंतर् में चौकड़ियाँ भरता अरुणोदय का प्रकाश
तरु-वर-समृद्धि का यह रहस्य, होता न कभी वह कुछ उदास
बाधाएँ आतीं, पर सहता, होता न व्यथाओं से निराश
है व्यथा, निराशा, गरल पान

विटपी को पर्णों का न शोक
दुख भी हो तो, पीले नीरस, पत्तों को सकता कौन रोक ?
वे झड़ते हैं, वे पड़ते हैं, होता यह सब नियमानुकूल
मिट्टी के बनते पर्ण और पर्णों की अंतिम साँस धूल,
संसृति के चिर परिवर्तन पर रो पड़ना जीवन का न लक्ष्य
जग स्वयं और उपकरण सभी उस महा काल के ग्रास, भक्ष्य
जीवन-कुठार की तीव्र नोक
विटपी में पर्ण न सब समान
पर, सबके अंतर् में विस्तृत विटपी के वे शाश्वत प्रतान
कोई गीला, कोई पीला, पर सब विटपी के जन्म-जात
सब पर समान संध्या-प्रभात, सब पर ही बहती मलय-वात
सब अपनी-अपनी परिस्थिति से झड़ते-बढ़ते, यह निर्विवाद
कितने ही ले उल्लास-रंग जाते कितने ही ले विषाद
संसृति का ऐसा ही विधान

तरु को होता तब दुख महान
जब हरे भरे पर्णों के ही अंधड़ लेता है चुरा प्राण
तब उसका क्रन्दन, आर्तनाद नभ में खोता है बार-बार
उस समय हुआ करती उसकी दयनीय व्यथा-पूरित पुकार
उसकी शाखाएँ और मूल हो उठते हैं कर्तव्य-मूढ़
पीड़ा, विपदा, क्रन्दन, दुख में कोई प्रच्छन्न रहस्य गूढ़
जीवन में करु व्यथा महान

तरु के वृन्तों का आत्म-त्याग
मिट्टी में मिलकर हँस पड़ता, इसका है केवल हेतु राग
सूक्ष्माति-सूक्ष्मतम अंकुर में अंकित स्वरूप तरु का विराट्
जीवन अँगड़ाई ले उगता धरती के सब स्तर छेद, काट
उसको न रोक पाती पृथ्वी, उसको न सकी झंझा मरोड़
वह घोर घटाओं में न गला, यों वर्ष हुए लाखों, करोड़
वह छिपा न तपकर दूर भाग

आतप आता भीषण ज्वलंत
भू का कण-कण जल-जल उठता, अंबर में होते व्रण दुरन्त
प्रस्तर जलते, हिलते न विटप, नीरसता का साम्राज्य शुष्क
दावानल सी लपटें उठतीं, चलता समीर तो महा रुक्ष
सारी संसृति जल-भुन जाती, पर जीवन फिर भी सरस शान्त
इसकी गति रुक पाती न कभी, लपटों का कुछ न प्रभाव क्रान्त
जीवन अनादि, जीवन अनन्त

आतप जाता ले शुष्क ध्यान
सूखा चिन्तन, सूखे तन मन, प्रतिपल बटोर कर शुष्क पान
जगती की शुष्क धमनियों में होता जीवन-संचार, सार
फूलों की सुन्दर शय्या पर रिमझिम का होता मधु विहार
परियों का सा मंजुल मेला लगता कलिकाओं का अमंद
सौरभ की छलनाओं में भी जीवन होता है नहीं बंद
जीवन के विस्तृत हैं प्रतान

पावस आता है लिए गान

जीवन में जीवन, जो भर-भर खिल-खिल उठते हैं प्राण-प्राण
अनुकूल वायु-मंडल में ही जीवन का होता है विकास
स्वाधीन, मुक्त नीलांबर में ही खग लेता है शान्ति-श्वास
संतोष, शान्ति आवश्यक है, जीवन के लिये स्वतन्त्र काल
जल-पूर्ण चिरंतन सर में ही विकसित होती है कमल-नाल

स्थितियाँ ही उन्नति का विमान

गिरते जब झर-झर उपल-खंड

हँस-हँस पड़ता तब ध्वंस, नाश, नाचती हिमानी हो प्रचंड
उल्का-पातों के तांडव से थर्रा उठती धरणी विशाल
काले जलदों का अन्धकार ढकता जग को आवरण डाल
उस महानाश की बेला में भी जीवन का रुकता न गान
जीवन-आशा की वीणा पर होता न छिन्न वह प्रगति-तान

जीवन का सूत्र अजर, अखंड

बह-बह जाता है नीर शुद्ध

चट्टानों का कर्कश शरीर करता है बारंबार रुद्ध
पथ रोक खड़ा हो जाता है दुर्धर्ष प्रस्तरों का जमाव
उत्तुंग शिखर-प्राकारों का आगे दाँयें बाँयें प्रभाव
जल-धारा के रुकते न चरण, उसका वैसा ही तीव्र वेग
चट्टानों में यों घुल जाता ज्यों महासमर में प्रखर तेग

जीवन है एक महान् युद्ध

जलदों में हँसता तड़ित्-नृत्य

होते रहते दिग्मंडल में काले जलदों के कृष्ण कृत्य
गाढान्धकार के बाहु-पाश चपला को लेते हैं समेट
उसके स्मित आनन का उज्ज्वल देता है तम उल्लास मेट
उस क्षण होता यह ज्ञात ज्योति का होने वाला है विनाश
पर, तम का बन्धन छिन्न-भिन्न कर हँस उठता है महोल्लास

जीवन में नव उल्लास सत्य

दूर्वा दल का दल वर्द्धमान
लघु-लघु से तिनकों का संचय, जो हरा भरा कोमल महान
कोमलता जीवन का संबल जिसमें मानवता प्रवहमान
झंझाओं के भी प्रलय-नृत्य ऊपर उड़ते ज्यों वायुवान
नित हरा-भरा ही रहता है कोमलता का अभिराम मूल
आतप में भी न झुलस पाते उसके मंजुल चिर-नवल फूल
शाद्वल-जीवन का ही वितान

अविरल चातक, दादुर, मयूर
मंजुल मधुमय स्वर में गाते प्रिय दशों दिशा में दूर-दूर
उनकी आकृतियाँ भाव-प्रवण जो लोकोत्तर-आनंद-लीन
जिनमें न हर्ष की सीमाएँ अविराम प्रवाहित जग-जनीन
आनन्दमयी ही अखिल सृष्टि, जीवन भी यह आनंद-पूत
आनन्द-लीन होता आखिर होकर आनंद-प्रसूत, भूत
जीवन वह, जो आनंद-चूर

सर में उठती हैं लहर लोल
बढ़-बढ़ रह जाती इच्छा सी चचल तरंग ग्रंथियाँ खोल
उद्वेलित हो उठता समस्त भावाकुल सा अविराम ताल
मानो पावस की झंझा में गतिमय नौकाएँ छिन्न-पाल
वेला का वातावरण क्षुब्ध कर देता जीवन को अशान्त
चंचल लहरों की ज्यों नर्तित होतीं अभिलाषाएँ अकान्त
थकतीं कूलों पर डोल-डोल

सर में उगता है पुंडरीक
जल में रह कर जल के ऊपर ही रहता, यह है बात ठीक
परिस्थितियों के ही दल-दल में जीवन की संवर्द्धित मृणाल
परिस्थितियों के ऊपर रह कर, पर रखता शाश्वत उच्च भाल
कर ग्रहण कीच का सार-तत्त्व सौरभ देता जग में बिखेर
जग का मधुमय स्वर्णिल गुंजन मँडराता परितः घेर-घेर
उन्नत शिर जीवन का प्रतीक

उगते ऊषा में अंशुमान
कमलों की कारा से विमुक्त हो जाते तत्क्षण मधुप म्लान
जीवन वह ही जिसमें उज्ज्वल दिनकर-किरणों का सा प्रकाश
ईषत् स्मिति के ही इंगित पर होता बन्दी-बन्धन-विनाश
अपने ही बंधन में सीमित जो जीवन, वह है नारकीय
वे नहीं उच्च, वे तुच्छ, हीन, जिनके उर में परकीय स्वीय
जीवन, रवि की स्वर्णिम उड़ान
मधुपों का सतत सहस्र-नाद
नीरज के खिन्न प्रसूनों कर देता दूर व्यथा, विषाद
वे खिल-खिल से पड़ते छविमय, गुंजन-तन्मय आलोक-प्राप्त
उनके आनन की श्री सुन्दर, होती न कभी किंचित् समाप्त
अगणित संगीतों का स्वरूप यह जीवन, जो जाज्वल्यमान्
मृतप्राय, विफल हो रहता है, हो जाता है जब भग्न गान
जीवन अनन्त का मधु निनाद
अंबर में उड़ते हैं विहंग
क्षितिजों तक विस्तृत मुक्त व्योम उर में भरता रहता उमंग
वह भी क्या जीवन, जिसमें कुछ होवे न भावना की उड़ान ?
उन्माद रास-रंगों का स्वर जिसमें मिश्रित कुंकुम-विहान
बन्धन की सीमाएँ उलाँघ ऊँचे-ऊँचे स्तर पर प्रयाण
स्वाधीन वात-आवरणों में ही विकसित होते सतत प्राण
बन्धन में होते स्वप्न भंग
जब हो आता है निकट नीड़
अविराम श्रान्त पथ-क्लान्त पंख हँस-हँस उठते, उड़ते सक्रीड़
प्राणों में पुलकित चेतनता करती निर्माण ज्वलंत लोक
उल्लास-हास की श्री हरती जीवन के दुख, विश्रान्ति, शोक
कोटर के तिनके - तिनके में जीवन की घटनाएँ अनन्त
सौन्दर्य भरित इतना जिसका कल्पना-लोक में भी न अन्त
कोटर जीवन-आधार नीड़

त्रयोदश सर्ग

शावक-कुल का क्रीड़ा-विहार

तरु की शीतल सुरभित छाया, कोटर के शाद्वल मंजुतार
अपलक निहार, सब कुछ बिसार, खग हो उठते भावुक विभोर
अपने हर्षित उद्‍गारों से गुंजित कर देते ओर छोर
ममता ही जीवन का स्पन्दन उसके अभाव में जग असार
रागात्मक बन्धन नैसर्गिक, ग्रंथित जग भर के तार - तार

ममता ही जीवन का प्रकार

संध्या के अंचल में अशान्त
जब खग कलरव गुंजित होता हतप्रभ सा रहता व्योम प्रान्त
नभ के अधरों की मृदु लाली हो जाती नीरस सी उदास
बीता क्षण बन सपना, चिन्तन, ग्रस लेता जीवन का प्रकाश
बीते युग का स्वर्णिम वैभव जीवन पर करता महा घात
क्षणदा का गहरा अन्धकार सा छा जाता, होता न प्रात

संस्मृतियों का दुर्धर्ष ध्वान्त
सुनसान पन्थ में पथिक श्रान्त
रवि-गति पर अपने लगा नयन हो जाता है कर्तव्य-भ्रान्त
उसके अंतर् की गति-विधियाँ संध्या की धूम शिखा समान
मंथर-मंथर सी उदासीन पाती न शान्ति, नैराश्य म्लान
वह बढ़ता, पर उसकी गति में आशा का किंचित् अंश-मात्र
एकाकीपन की परिस्थितियाँ सूना कर देतीं हृदय, गात्र

मझधार शेष जीवन दुखान्त
घर - घर में जलते हैं प्रदीप
वे जिस-जिस स्थल पर जलते हैं, रह पाता नहीं तिमिर समीप
लघु सा दीपक लघु-लघु तन-मन, पर नहीं कभी नैराश्य-भाव
जल-जल कर आलोकित करता, परिस्थियों पर अपना प्रभाव
जलते जाना ही सार्थक है, रश्मियाँ पुष्ट करतीं विवेक
जड़ता के प्रांगण में अभिनय आसुरी शक्ति करती अनेक
दीपित जीवन, तम का प्रतीप

दीपक से करता शलभ स्नेह
दीपक के चिंतन में ही वे दे देते अपनी स्वर्ण-देह
रहता कोई भी नहीं स्वार्थ वे इतने होते हैं उदार
जीवन को उच्च बनाता है कालिमा-हीन निःस्वार्थ प्यार
अपने में और पराये में तब रहता कुछ भी नहीं भेद
दारुण से दारुण पीड़ा से भी होता है कुछ नहीं खेद
जीवन का निश्छल प्रणय गेह

गहरा नभ में नक्षत्र-जाल
झिल-मिल झिल-मिल करते रहते जैसे मालाओं के प्रवाल
दे पाते जग को कुछ न ज्योति यद्यपि विस्तृत हैं गुच्छ-गुच्छ
वे केवल अपने में सीमित, उनका तन, चिंतन, हृदय तुच्छ
उनका जीवन औदार्य-शून्य, जीवन उदारता से महान
आत्मा-विवृद्धि ही मुख्य, हृदय-संकोचन अधःपतन प्रधान
जीवन-रण में औदार्य ढाल

छाया रहता है अन्धकार
सूने-सूने से नयन मौन कुछ खोज न पाते हार - हार
बढ़ते शंकाकुल चरण किन्तु यह ज्ञात न होता कौन राह ?
हो रहता डाँवाडोल ज्ञान, ठोकर लगने पर आह ! आह !
सत्य के भवन का दृढ़ प्रहरी यह अन्धकार जो ज्ञान-स्रोत
इसके आधार बिना होना संभव न ज्योति में ओतप्रोत
जीवन यह तम के नहीं पार

करते वे ही आलोक प्राप्त
जो अपने जीवन के सब क्षण तम में कर देते हैं समाप्त
यदि तम न रहे तो यहाँ ज्योति का होवे कोई भी न मोल
तम की अंतिम सीमाओं से रहता प्रकाश का मेल-जोल
तम-बाधा, पर वह ही संबल, उसके अंतर् में ही प्रकाश
जीवन का विस्तृत अन्धकार ही जीवन में भरता विकास
निश्चय, जीवन में तिमिर आप्त

होता अविराम व्यतीत काल
क्षण-क्षण कर-कर पल-पल हर कर दौड़ा आता कोई कराल
वह वज्रदंष्ट्र अपने तन में ले शत-शत दिग्गज-अश्व-वेग
करता आता है महाघोष ज्यों पावस निशि में कृष्ण मेघ
उसकी जिह्वा में आकर्षण, जाते सब उस ही ओर भाग
ऐसा कोई अपवाद एक, जिसका उसके प्रति है विराग
क्षण-मुक्ता चुगता वह मराल
जीवन सम्मिश्रित - दुग्ध - नीर
इस नीर क्षीर का ज्ञान जिसे वह ही पा सकता पुष्टि-तीर
प्रत्येक बिन्दु में तथ्य भरा वह तथ्य किन्तु प्रच्छन्न, गूढ़
पाते वे जो रखते विवेक, वे खो देते जो महा मूढ़
जीवन के विस्तृत सागर में वे ही कर सकते हैं विहार
प्रत्येक क्षणों का, प्रतिपल का, जिनके अंतस्तल में विचार
मझधार डूबते हैं अधीर
उड़ती रहती है सतत रेत
विस्तृत असीम के अंचल में अविरल चंचल स्वच्छन्द-चेत
वह मन्थर वायु-लहरियों में परियों का सा करती विहार
बिखरे पड़ते, निखरे पड़ते उसके भावों के तार - तार
बन्धन में उसके कंठ रुद्ध, वह सदा विचरती दिवस-रात
उलझन की कारा में नीरस निष्फल बन जाता हृदय, गात
उलझन से जीवन बने प्रेत
उत्तुंग महान् नगाधिराज
जो वसुधा के वक्षस्थल पर नभ के प्राणों तक रहे राज
शत-शत अगणित तरुवर जिनके रोमों की ज्यों होते प्रतीत
जिनके अंचल में लक्ष - कोटि दिनचर्या जन्तु करें व्यतीत
वे उन्नतशिर ऊँचे नभ में नव मेघों का सुनते निनाद
दुख सुख से ऊँचे स्तर ऊपर उठने से ही जाता विषाद
उन्नति ही जीवन का जहाज
जग में मुस्काता औषधीश
नित अमृत की वर्षा करता, शीतल ही रखता शुभ्र शीश

ऊँचे नीचे का कुछ न बोध सबको समान देता सुधांश
घटते - घटते, कटते - कटते तन के लुट जाते अस्थि-मांस
होता जाता वह क्षीण किन्तु आता कोई न कभी दुराव
जग-आह्लादित-कर्ता जीवन ही रख पाता अपना प्रभाव
कलुषित जीवन तो एक टीस

संध्या-सरसिज के अंतर् का सुनसान द्वार
दिग् दिगंत के प्राकार-पन्थ पर तिमिर-चार
कृष्णोरग के काले मुख में जग निराधार
कुछ ही क्षण पूर्व दिनावसान, अब शनैः स्फार
जगमग - जगमग एकाकी मीराँ का निवास
मीराँ के अंतर् में द्विगुणित हर्षितोल्लास
चिन्तन के मंजुल भावों का शतशः विकास
गुन-गुना रही थी गायन, मुख पर शान्ति-भास
मुझको पथ दीख रहा मेरा

जग का क्या है, जग तो यों ही पथ में बाधाएँ लायेगा
उत्थान न होने देगा कुछ, पर पतन देख मुस्कायेगा
कंटक-तममय निर्जनपथ पर जग ने कब किस का साथ दिया ?
तूफानों के तांडव में कब लोगों ने किसको हाथ दिया ?
बढ़ने वाले, रहने वाले, दोनों की ही विपरीत दिशा
जग आरामी है, पर सम है बढ़ने को प्रात - निशा
जिस पर न तिमिर, कंटक, कंकड़, वन विजन रहे, वह पथ कैसा ?
केवल लीकों-लीकों पर ही जो बढ़ पाये, वह रथ कैसा ?
चरणों के पीछे-पीछे ही क्या बढ़ना बढ़ने वालों का ?
परकीय करालंबन लेकर क्या चढ़ना चढ़ने वालों का ?
पथ है वह ही, जिस पर विपदाओं का रहता परितः घेरा

चुप ! चुप ! रहने दो, बंद करो कल्पना, भाव !
तुमने मेरे अंतर्-तल में कर दिये घाव
सत्यानाशिन, भ्रष्टे, पतिते, कुल वंश-मार !
निर्मलता में आ गई कहाँ से तू विकार ?

सन्तोष तभी होगा जब तेरे हरूँ प्राण
गिरधर भी तेरा कर न सकेगा आज त्राण
मैं महाकाल, जीवन करने वाला समाप्त
रज में मिलने वाले हैं तेरे भाव व्याप्त
अंधड़ की ज्यों आये देवर चुपचाप, क्रुद्ध
मीराँ वैसे ही शान्त किन्तु निर्भय प्रबुद्ध
मीराँ के ज्योतिर्मय ऊपर उठ गये नेत्र
वे क्रोध-ग्रस्त थे, काँप रहे थे यथा वेत्र
ज्यों ही मीराँ की दृष्टि पड़ी अभिराम शान्त
निश्छल, निर्मल, निर्भय, दीपित, स्वर्गीय, कान्त
देवर हतप्रभ, श्री-हीन हुए, कर्तव्य-भ्रान्त
हिल उठा, डगमगा गया, हृदय का पुष्ट प्रान्त
कहते-कहते रुक गये, अचानक हुए मूक
चेतना गई, कर्तव्य-मूढ़, ज्यों भूल-चूक
ज्योतिर्मय मुख-मंडल ने कर्षित किया ध्यान
सुन्दर थी स्वर-लहरी, सुन्दर था प्रगति-गान
गंभीर हो गई थी, जागृत था स्वाभिमान
देवर से बोली, अनुचित यह भाषण-विधान
मैं समझ न पायी चाह रहे क्या क्रुद्ध आप ?
पहले कह लेते, फिर कर सकते थे प्रलाप
कुल-मर्यादा कर भंग बन रही है अजान
अब सह्य नहीं होगा मुझसे यह व्यर्थ ज्ञान
धर्मों-कर्मों के ऊपर पानी दिया फेर
क्या देख रही है यों मुझको आँखें तरेर ?
मेरे जीवन-आधार कृष्ण हैं एकमात्र
उसके ही मन, चिन्तन, अभिलाषा और गात्र
मदिरा के लोभी, जाओ, अपना करो काम !
रख लो अपने ये माणिक, मुक्ता, धान्य, धाम !
जिस वैभव पर तुम मत्त बने हो, हो अधीर
उसको ठुकराती हूँ मैं, मेरा दूर तीर

मैं नारी हूँ, स्वच्छन्द सर्वथा मुक्त, पूत
कर सकते क्या तुम मांस-सुरा के अग्रदूत ?
नारी को तुम बन्दिनी बनाना रहे चाह
है धर्म तुम्हारा उसकी पीड़ा, करुण दाह
ऐसे धर्मों कर्मों का होगा शीघ्र नाश
देखो, सोचो, अब चेतो रे वासना-दास !
मिथ्या है कुल-मर्यादा का दर्पाभिमान
ऊँचा, नीचा चिंतन प्राणी का व्यर्थ ज्ञान
स्वार्थों का ही जंजाल बन रहा है समाज
कुटिलों, विश्वास-घातियों का हो रहा राज
कैसा समाज वह, जिसमें होवे भ्रूण-पात ?
नन्हें शिशुओं के शोणित से भू रक्त - स्नात
दुर्गन्धित सर है, घूम रहे स्वच्छन्द दंश
कैसा समाज, कैसी मर्यादा, कहाँ वंश ?
ऐसे समाज, कुल पर करती मैं पदाघात
कुल-मर्यादा, मूढ़ों के मन की क्षुद्र बात
प्रभु का कण-कण, जग के जन-जन मेरा समाज
मैं नहीं कूप-मंडूक, न झूठी शर्म, लाज

मैं गिरधर के रँग राचूँगी
अभिशाप, शाप, जप जाप, ताप
मैं देख रही हूँ पुण्य-पाप
छोटे लोगों की क्षुद्र माप
रोकेगा मुझको क्या विलाप ?
रे, इन आवरणों के भीतर
अन्याय, असत्य छिपा जर्जर
पंछी का नैसर्गिक अंबर
जीवन का सत्य नहीं पिंजर
नर्तन सजीवता का संबल
प्राचीरों में गति, गान विकल
भावाकुल हैं पग - तल चंचल
गतिशील स्वरों पर मन निश्छल

झंझा-इंगित सा विक्षेपण
सहला देता जग-तल के व्रण
हैं मूल्यवान् जीवन के क्षण
धरती जैसा है मेरा प्रण

कहते हो तुम मत नाचो, पर
मैं नाचूँगी, मैं नाचूँगी
मैं गिरधर के रँग नाचूँगी
मैं आग लगाने आयी हूँ
मैं आग लगा कर जाऊँगी
पलकें सपनों में डूब रहीं
मधु-भीनी विहँस रही छलना
आलोक-विभा के अधरों पर
दुष्कर सा लगता है चलना
रे, जाग जगाने आयी हूँ
जग जाग! जगाकर जाऊँगी
मैं आग लगाने आई हूँ
मैं आग लगा कर जाऊँगी
शाद्वलता के अंतस्तल में
ऊसर-खंडों का अट्टहास
सौरभ गतश्री, पंखुड़ियाँ मृत
आतप-आगम, डंठल हताश
मैं बाग लगाने आयी हूँ
मैं बाग लगा कर जाऊँगी
मैं आग लगाने आयी हूँ
मैं आग लगा कर जाऊँगी
अरुणिमा-तरुणिमा अस्तंगत
जलधर घिर-घिर विस्तृत फिर-फिर
ज्योतिर्भविष्य तम का हविष्य
गत-गान चिरंतन अचिर अजिर

तम भाग, भगाने आयी हूँ
रे भाग, भगा कर जाऊँगी
मैं आग लगाने आयी हूँ
मैं आग लगा कर जाऊँगी
कोई न रोकने वाला मीराँ चली मग्न
अभिराम, अलौकिक, पावन आभा में निमग्न
हत-प्रभ, निर्वाक्, विमूढ़, काष्ठ सा स्थाणु, हीन
रह गया देखता ही देवर, अनुभव नवीन
पिंजड़े की सीमा-कारा से सिंहनी मुक्त
उसकी दहाड़ से हुआ अधिप संभीति-युक्त
बहनेवाली धारा को कोई सका रोक?
हत्यारा था चुप, गरज रहा जो ताल ठोंक
ऊँचे - ऊँचे गिरि-शृंग झाँकते रहे व्योम
आश्चर्य-चकित, विह्वल, गद्-गद् थे रोम-रोम
दिग्मंडल, भू, आकाश, आप ज्यों गये काँप
प्रासाद, महल कुंठित-वैभव, ज्यों डसे साँप
पी गई जगत्कल्याण-हेतु वह कालकूट
टिक सका सत्य के आगे किंचित् भी न झूठ
दुर्दान्त काल-सर्पों के रौरव कुटिल ईश
ज्योतिर्जीवन को देख न पाये उठा शीश
चरणामृत सम ले लिया धरा का पाप-ताप
मारुत् लहरों में फैल गया पावन प्रताप
नतमस्तक श्रद्धा-मन में डूबा जन-समूह
"मीराँ की जय" "मीराँ की जय-" मय चक्र व्यूह
पग घुँघरु बाँध मीराँ नाची, रै!
मैं तो अपणै नारायण री, आपइ होगी दासी, रै!
लोग कहैं मीराँ हुई बावली, सास कहै कुलनासी रै!
विष रो प्यालो राणाजी भेज्यो, पीताँ मीराँ हाँसी रै!
'मीराँ' रा प्रभु गिरधर नागर, सहज मिल्या अविनासी रै!

★